आयुर्वेद एवं वनौषधि

कनिष्ठ सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 2.5

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

आयुर्वेद एवं वनौषधि कनिष्ठ सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

सङ्कलनकर्ता

पं. सत्यम् शुक्ल
आचार्य, यूजीसी नेट(शिक्षक ऋग्वेद शाकल)

पं. चिदानन्द शास्त्री
आचार्य, यूजीसी नेट(शिक्षक ऋग्वेद शाकल)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग एवं टङ्कण : नरेन्द्र सोलंकी

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN :

मूल्य :

संस्करण :2024

प्रकाशित प्रति PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

आयुर्वेद एवं वनौषधि कनिष्ठ सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

प्राक्कथन

आयुर्वेद एक अनादि एवं शाश्वत जीवन विज्ञान शास्त्र है, जिसमें धर्म अर्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्विध पुरुषार्थ के मूल साधनभूत आरोग्य का प्रतिपादन किया गया है। आयुर्वेद में प्रतिपादित सिद्धान्त इतने सामान्य, व्यापक, जनजीवनोपयोगी एवं सर्वसाधारण के लिए हितकारी हैं कि सरलतापूर्वक उन्हें अमल में लाकर यथाशीघ्र आरोग्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अतः शारीरिक, मानसिक, एवं बौद्धिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आयुर्वेद की उपयोगिता सुविदित है। आयुर्वेद केवल चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है, अपितु यह शरीर विज्ञान, मानव विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, आचारशास्त्र एवं धर्मशास्त्र का एक ऐसा अद्भुत समन्वित स्वरूप है जो सम्पूर्ण जीवन के अन्यान्य पक्षों को व्याप्त कर लेता है। अतः निःसन्देह यह एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है।

शास्त्रों में आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति (व्युत्पत्ति) निम्न प्रकार से मिलती है-

आयुर्वेदयति बोधयति इति आयुर्वेदः।

अर्थात् यह शास्त्र आयु का वेदन (बोध) या ज्ञान कराता है, अतः यह आयुर्वेद कहलाता है। इसमें उत्तर पद 'विद् ज्ञाने' धातु से निष्पन्न है। अर्थात् ज्ञान अर्थ में प्रयुक्त 'विद्' धातु से वेद शब्द बना है। इसी प्रकार आचार्य उल्हण भी ज्ञानार्थक विद् धातु से आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति निम्न प्रकार करते हैं-

आयुर्विद्यते ज्ञायतेऽनेनेति आयुर्वेदः।

आयु इससे जानी जाती है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। यहां विद्यातु ज्ञानार्थक है।

आयुर्विद्यते विचार्यतेऽनेन वेत्यायुर्वेदः।

आयु का इसके द्वारा विचार (विवेचन) किया जाता है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। यहाँ विचारणा अर्थ में विद् धातु का प्रयोग है।

आयुरस्मिन् विद्यते, अनेन वाऽऽयुविन्दतीत्यायुर्वेदः ।

(सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान १/१५)

प्रतिपाद्य विषय के रूप में आयु इसमें विद्यमान है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। इसीप्रकार

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।

मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः' स उच्यते ॥ (चरक संहिता, सूत्रस्थान १/४१)

जिस शास्त्र में हित आयु, अहित आयु, सुख आयु, दुःख आयु इन चार प्रकार की आयु के लिए हित (पच्य) अहित (अपथ्य), इस आयु का मान (प्रमाण और अप्रमाण) तथा आयु का स्वरूप प्रतिपादित हो वह आयुर्वेद कहलाता है।

आयुर्वेद शास्त्र केवल भौतिक तत्वों तक ही सीमित नहीं है, अपितु आध्यात्मिक तथ्यों के विवेचन में भी अपनी मौलिक विशेषता रखता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के आद्य स्त्रोत वेद तथा उपनिषद् के बीज ही आयुर्वेद में प्रसार को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार मानव जीवन में आयुर्वेद एवं वनौषधियों के महत्व को स्पष्टतया देखा जा सकता है।

ग्रन्थ सङ्कलन में आयुर्वेद के मूल वेदों तथा उपवेदों का परिचय, आयुर्वेद का इतिहास एवं परम्परा, आयुर्वेदोक्त दिनचर्या, आयुर्वेदोक्त ऋतुचर्या, अमरकोष का वनौषधि वर्ग, वेदों में उल्लिखित वनस्पतियाँ आदि विषयों से सम्बद्ध पाठ्यसामग्री को सङ्कलित करने का प्रयत्न किया गया है।

ऋग्वेद के कथनानुसार कृषिन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वनप वृङ्क्ते चरित्रे। अर्थात् भूमि को खोदता हुआ हल का फाल कृषक को फल देता है उसी प्रकार यह सङ्कलित पाठ्यसामग्री भी राष्ट्रीय स्तर पर आयुर्वेद एवं वनौषधि कनिष्ट सहायक के अध्येताओं तथा अन्य सभी पाठकों की स्वज्ञान वृद्धि के साथ-साथ रोजगारपरक ज्ञान में भी अत्यन्तोपयोगी सिद्ध होगी।

क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फलम्॥

पं. सत्यम् शुक्ल
पं. चिदानन्द शास्त्री

अनुक्रमणिका

इकाई – 1 वेद उपवेद परिचय 3

1.1 ऋग्वेद एवं उपवेद (आयुर्वेद) परिचय 7

1.2 यजुर्वेद एवं उपवेद (धनुर्वेद) परिचय 10

1.3 सामवेद एवं उपवेद(गन्धर्ववेद) परिचय 17

1.4 अथर्ववेद एवं उपवेद(स्थापत्यवेद) परिचय 21

इकाई 2 – आयुर्वेद का इतिहास एवं परम्परा 25

02.01 आयुर्वेद का इतिहास 25

02.03 आयुर्वेद की ग्रन्थ परम्परा 31

02.03 आयुर्वेद का प्रयोजन 34

इकाई 3 – आयुर्वेदोक्त दिनचर्या 36

3.1 प्रातःकाल के कार्य और विधि 36

3.2 व्यायाम की विधि और निषेध 38

3.3 स्नानविधि 40

3.5 सदाचार 41

3.6 शरीरशुद्धि की विधि 44

इकाई 4 -आयुर्वेदोक्त ऋतुचर्या 45

04.01 हेमन्त ऋतुचर्या 45

04.02 शिशिर ऋतुचर्या 47

04.03 वसन्त ऋतुचर्या 48

04.04 ग्रीष्म ऋतुचर्या 50

04.05 वर्षा ऋतुचर्या 50

04.06 शरद् ऋतुचर्या 55

इकाई 5 – अमरकोष वनौषधि वर्ग 59

अथ वनौषधिवर्गः। 59

इकाई 6 – वेदों में उल्लिखित वनस्पतियों का परिचय.....66

इकाई – 1 वेद उपवेद परिचय

वेद परिचय

विद् सत्तायाम्', 'विद् ज्ञाने', 'विद् विचारणे' और 'विद्लृ लाभे' – इन चार धातुओं से 'वेद' शब्द निष्पन्न होता है। 'जिसकी सदैव विद्यमानता (सत्ता) हो', 'जो अपूर्व ज्ञानप्रद हो', 'जो इह और पर उभयविध विचारों का कोश हो', 'जो लौकिक और लोकोत्तर लाभप्रद हो', ऐसी ज्ञानराशि को 'वेद' कहते हैं। **'विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिः धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः'** (विष्णुमित्र, ऋग्वेदप्रातिशाख्य-वर्गद्वयवृत्तिः) अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ये चार पुरुषार्थ जिसके द्वारा जाना जाए या प्राप्त किया जाए वह वेद है। वेद सर्वविध ज्ञान और सभी विचारों के मूल स्रोत हैं, वेद नित्य हैं और सभी कालों में मनुष्य को उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति और उनके उपयोग के उपाय बताते हैं। वेदों में सत्ता, ज्ञान, विचार और लाभ ये चारों गुण विद्यमान हैं। सिद्धान्तकौमुदी में 'विद्' धातु के अर्थ इस प्रकार उल्लेखित हैं-

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।

विन्दते विन्दति प्राप्तौ ॥

महान् वेदभाष्यकार आचार्य सायण के अनुसार- वेद इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के निवारण का अलौकिक उपाय बताने वाले हैं (**इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः अलौकिकम् उपायं यो वेदयति स वेदः**)। हमारे जीवन के लिए उपयोगी एवं आवश्यक ज्ञान वेदों से प्राप्त होता है। महर्षि आपस्तम्ब ने "वेद" की परिभाषा करते हुए कहा है- **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्** । इस परिभाषा से वेद के स्वरूप का बोध होता है।

वेद के दो विशिष्ट भाग हैं – मन्त्र और ब्राह्मण, वेद की संहिताएँ मन्त्रभाग के अन्तर्गत हैं तथा वेद का ब्राह्मणादि वाङ्मय ब्राह्मण के अन्तर्गत आता है। परमपिता परमेश्वर की वाणी रूपी वेद शब्द को श्रुति, निगम, आम्नाय इत्यादि नामों से भी जाना जाता है।

ऋषियों ने अपनी तपस्सिद्ध दिव्य चैतन्यमयी आर्ष दृष्टि से जिस दिव्य ज्ञान का दर्शन (साक्षात्कार) किया है, उसको वेद कहते हैं। भारतीय ज्ञान-परम्परा एवं धर्म के मूल में वेदों

में निहित दिव्य ज्ञान ही है। मनु ने धर्म के मुख्य स्त्रोत के रूप में वेदों को स्वीकार करते हुए कहा है-

"स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः" । "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।"

आचार्य सायण के अनुसार इन्द्रियातीत तत्त्वों की प्रतीति वेदों से होती है –

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।

एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

वेद का वेदत्व यही है कि जो पदार्थ और उसकी प्राप्ति का उपाय (ज्ञान), प्रत्यक्ष तथा अनुमान से नहीं मिलता वह वेद के द्वारा प्राप्त होता है, अर्थात् प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों से जो सामने या परोक्ष स्थित वस्तु तथा उसके ज्ञान का उपाय प्राप्त नहीं होता है, उस इन्द्रिय अनुभव से परे अलौकिक वस्तु अथवा उसके ज्ञान का उपाय वेद से प्राप्त होता है।

गणित, संख्याशास्त्र, सङ्गणनपद्धति, भूगर्भशास्त्र, शरीर विज्ञानशास्त्र, जीववैविध्यशास्त्र, आयुर्वेद, प्राणिविज्ञान, मनुष्य के विविध अङ्गों एवं उन के क्रियोओं का उल्लेख, वनस्पतिविज्ञान, जल भैषज्य, ज्ञानप्राप्ति के मार्ग–उपाय, वनौषधि - औषधीय पौधे, रत्न एवं धातु विज्ञान, वास्तुविज्ञान, नाडीविज्ञान, मानव मनोविज्ञान, वृष्टिविज्ञान, जलशोधन, ज्योतिषविद्या, यज्ञविद्या, प्राणविद्या, पञ्चकोशविद्या,भारतीय दर्शन के मूलतत्व, स्वयं को (आत्मा को) जानने का विज्ञान के मूल मार्ग, प्रकृति की मूल शक्तियों का स्वरूप विज्ञान, व्यक्ति एवं आराध्य की एकता का उपदेश (अहं ब्रह्मास्मि द्वारा), विविध नामों से कहे जानेवाले देवता एक (एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति), मनुष्य को सदा आनन्दमय बने रहने के रहस्य आदि का प्रथम उपदेश वेदों में है। प्रकृति के साथ समरसता बिठाने का मूलमन्त्र वेद में है। मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रथम उपदेश, नैतिक मूल्य, सामाजिक दायित्व एवं समरसता का, विश्वदृष्टि एवं विश्वबन्धुत्व का, विश्व शान्ति का मूल मन्त्र वैदिक शान्ति मन्त्रों में ऋषियों द्वारा दृष्ट है। भारतीय भाषाओं के शब्दों का मूल तथा शब्दों का अथाह भण्डार वेद हैं। विश्व के विविध भाषाओं की सभ्यता के मूलशब्द वेद मूलक हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली के मूल में वेद एवं वैदिक ज्ञान हैं इस प्रकार वेदों की महत्ता को स्पष्टतया देखा जा सकता है।

वेदों का महत्त्व बहु-आयामी है। भारतीय संस्कृति का मूल आधार वेद है। वेद में उच्चतम आध्यात्मिक ज्ञान (परा विद्या) के साथ-साथ संसार का ज्ञान (अपरा विद्या) भी मिलता है। वेद मात्र अध्यात्म ही नहीं अपितु भाषा, साहित्य, विज्ञान, चिकित्सा, राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान, कृषि, काव्य, कला, सङ्गीत इत्यादि विषयों के दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वेदों में राजनीतिशास्त्र की सामग्री भी बहुत मात्रा में उपलब्ध हैं। इसमें राष्ट्र का स्वरूप, उसके विविध अङ्ग, राजा व उसके कर्तव्य, न्याय एवं दण्डविधान आदि विषय उल्लेखनीय हैं। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। इनमें समस्त ज्ञान निहित है। वेदों में ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्र हैं। यह मन्त्र तीन प्रकार से प्राप्त होते हैं, जो क्रमशः ऋक्, यजुष तथा साम कहे जाते हैं।

वेदत्रयी के अन्तर्गत चारों वेदों को स्वीकार किया गया है। यहाँ वेदत्रयी से तात्पर्य है ऋक्, यजुस् तथा सामन् (छन्दस्, गद्य,गीति) जो न कि तीन वेद हैं अपितु मन्त्रों के तीन प्रकार हैं। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है- **त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि ।** - श.ब्रा. ४/६/७/१

पद्यात्मक छन्दोमयी वाणी ऋचा के नाम से, गानमयी वाणी साम के नाम से तथा गद्यात्मक वाणी यजुस् के नाम से प्रसिद्ध है। अत: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद संहिताओं में ऋक्, यजुस् और साम (छन्द, गद्य, गान) के अतिरिक्त किसी विधा का कोई भी मन्त्र नहीं दिखाई देता है। इसलिए महर्षि जैमिनि का कथन है- **तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था । गीतिषु सामाख्या । शेषे यजु: शब्द:।** - जैमिनीयन्यायमाला २/१/३२-३४

पुनः यदि यज्ञ के दृष्टि से विचार करते हैं तो, यज्ञ में प्रमुख ४ ऋत्विज होते हैं। ऋग्वेदविद् होता, यजुर्वेदविद् अध्वर्यु, सामवेदविद् उद्गाता, तथा अथर्ववेदविद् ब्रह्मा के नाम से जाना जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण की निम्नलिखित उक्ति भी यही स्पष्ट सिद्ध करती है कि सरलता पूर्वक यज्ञ कार्य के निर्वाह के लिए चारों वेदों के विषयों को त्रयी विद्या के रूप में ग्रहण किया गया है- **यद्दचैव हौत्रं क्रियते यजुषाध्वर्यवं साम्नोद्गीथं व्यारब्धा त्रयी विद्या भवत्यथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इति त्रय्या विद्यया इति ब्रूयात्।** - ऐ.ब्रा. ५/५/८

यहाँ पर 'अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते? त्रय्या विद्यया' से यह भी स्पष्ट होता है कि त्रयी विद्या ब्रह्मा की कार्य साधिका है। अथर्ववेद के अध्ययन के बिना समग्र त्रयी विद्या का ज्ञान असम्भव है। "**ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति**" - निरुक्त १/३/३

अत: अथर्ववेद का ज्ञाता ही ब्रह्मा होता है, जो यज्ञ की सभी प्रकार से रक्षा करता है। निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि वेदत्रयी से चारों वेदों का ज्ञान होता है।

वेदों में ईश्वर, अलौकिक शक्ति, खगोल विज्ञान, ब्रह्माण्ड, गणित की अवधारणाएँ, चिकित्सा, भूगोल, इतिहास, ऋतुएँ, प्रकृति, अच्छाई, सार्वभौमिक धार्मिकता, मानव व्यवहार, दर्शनशास्त्र, संगीत आदि विविध विषय सन्निहित हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, "वेद सभी प्रकार के ज्ञान के प्रमुख स्रोत हैं"। वेदों का दार्शनिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक, आर्थिक, सुरक्षा और वैज्ञानिक दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व है। वेदों में आधुनिक जगत के अनेक आवश्यक विचारों और ज्ञान शाखाओं की मूल संकल्पना निहित है।

वेदों ने हमें जीवन जीने के तरीके सिखाएं, वहीं सङ्केत किया कि इस ब्रह्माण्ड में समस्त वस्तुएँ मिलकर एक कुटुम्ब का निर्माण करती हैं, जहाँ हम प्रकृति के साथ जीवन को संतुलित करते हुए, पृथ्वी को अपनी माँ तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एक परिवार के रूप में मानते हैं। वेद हमें मानवता, विनम्रता, शान्ति और विश्वबन्धुत्व का मार्ग दिखाते हैं तथा सूर्य के समान मित्र की दृष्टि से सभी को एक समान देखना सिखाते हैं।

दृते दृꣳहं मा मित्रस्यं मा चक्षुंषा सर्वाणि भूतानि समींक्षन्ताम्।
मित्रस्याऽहं चक्षुंषा सर्वाणि भूतानि समींक्षे। मित्रस्य चक्षुंषा समींक्षामहे॥

- यजुर्वेद ३६.१८

अर्थात्, तुम द्रोह करने वालों के प्रति द्रोह मत करो। विचार करो कि सभी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं भी सभी को मित्र की दृष्टि से देखूँ। हम सभी परस्पर मित्र की भाँति रहें।

उपवेद परिचय

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गन्धर्वश्चेति ते त्रयः।

स्थापत्य वेदमपरमुपवेदः चतुर्विधः॥

क्र.	उपवेद	विषय	वेद
1	आयुर्वेद	स्वास्थ्य और जीवन का विज्ञान	ऋग्वेद (चरणव्यूह के अनुसार)
2	धनुर्वेद	युद्ध कौशल इत्यादि	यजुर्वेद
3	गंधर्ववेद	संगीत, नृत्य इत्यादि	सामवेद
4	स्थापत्य (अर्थशास्त्र, शिल्पवेद)	लोक प्रशासन, अर्थव्यवस्था, राजनीति इत्यादि	अथर्ववेद

ऋग्वेद के उपवेद के विषय में थोड़ा मतान्तर प्राप्त होता है, चरणव्यूह के अनुसार ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद माना जाता है किन्तु सुश्रुत आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद मानते हैं।

1.1 ऋग्वेद एवं उपवेद (आयुर्वेद) परिचय

वैदिक वाङ्मय में पाद, अर्थ से युक्त तथा छन्दोबद्ध ऋचाओं के समूह को ऋग्वेद कहा गया है, महर्षि जैमिनि ने उल्लेख किया है- 'पादबद्धा ऋक्'। विष्णुमित्र ने कहा है-

'यः कश्चित्पादवान्मन्त्रो युक्तश्चाक्षरसम्पदा।
स्वरयुक्तोऽवसाने च तामृचं परिजानते॥'

जिस वेद के मन्त्रों से देवताओं की स्तुति की जाती है, उस वेद को ऋग्वेद कहते हैं। जैमिनीय न्यायमाला में कहा गया है - **ऋच्यन्ते स्तूयन्ते देवा अनया इति ऋक्।** निष्कर्ष रूप में, जिन मन्त्रों में अर्थ विच्छिन्न नहीं होता है, जिन मन्त्रों में अर्थ के अनुसार पाद होते हैं तथा जिन मन्त्रों में पाद, निश्चित अक्षरसंख्या में निबद्ध होते हैं, उन मन्त्रों का समूह ही ऋग्वेद है।

ऋग्वेद की शाखाएँ -

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है- '**एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्**' इसके अनुसार ऋग्वेद में इक्कीस (२१) शाखाएँ मिलती थी। परन्तु चरणव्यूह में ऋग्वेद की इन पाँच शाखाओं का नामोल्लेख है-

१. शाकलशाखा २. बाष्कलशाखा

३. शांखायनशाखा ५. माण्डूकायनशाखा

४. आश्वलायनशाखा

वर्तमान में इनमें से केवल शाकल शाखा ही अध्ययन-अध्यापन परम्परा में दिखाई देती है। अन्य शाखाओं में कुछ शाखाओं की संहिताएँ ही प्राप्त होती हैं, जैसे- शांखायन संहिता ।

ऋग्वेद की मन्त्र संख्या एवं विभाजन -

ऋग्वेद में कुल १०५५२ ऋचाएँ, २००६ वर्ग, १०१७ सूक्त तथा ११ परिशिष्ट (खिल) सूक्त हैं। ऋग्वेद को अष्टक क्रम एवं मण्डल क्रम में विभक्त किया जाता है। परम्परा में सस्वर अध्ययन की दृष्टि से अष्टक क्रम ही मानित है।

अष्टक क्रम –

इस विभाजन क्रम में सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता को ८ अष्टकों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक अष्टक में ८ अध्यायों को समाहित किया गया है तथा प्रत्येक अध्याय में 'वर्ग' प्राप्त होते हैं। इस विभाजन क्रम में ऋग्वेद संहिता कुल ६४ अध्यायों में विभाजित है। अध्ययन-अध्यापन परम्परा की दृष्टि से यह विभाजन क्रम मान्य है।

अष्टक		अध्याय		कुल अध्याय
८	x	८	=	६४

मण्डल क्रम-

इस विभाजन क्रम में सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता को १० मण्डलों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक मण्डल में अनुवाकों का तथा प्रत्येक अनुवाक में सूक्तों का समायोजन किया गया है। यह विभाजन ऋषि, देवता, छन्द की दृष्टि से उपयुक्त माना जाता है। आधुनिक वेद चिन्तक मण्डलक्रम का आश्रय लेते हैं।

मण्डल	द्रष्टा ऋषि	अनुवाक संख्या	सूक्त संख्या	मन्त्र संख्या
प्रथम मण्डल	शतर्चिनः	२४	१९१	२००६
द्वितीय मण्डल	गृत्समद एवं उनके वंशज	४	४३	४२९

तृतीय मण्डल	विश्वामित्र एवं उनके वंशज	५	६२	६१७
चतुर्थ मण्डल	वामदेव एवं उनके वंशज	५	५८	५८९
पञ्चम मण्डल	अत्रि एवं उनके वंशज	६	८७	७२७
षष्ठ मण्डल	भारद्वाज एवं उनके वंशज	६	७५	७६५
सप्तम मण्डल	वसिष्ठ एवं उनके वंशज	६	१०४	८४१
अष्टम मण्डल	कण्व एवं उनके वंशज	१०	९२+११(वालखिल्य)	१७१६
नवम मण्डल	पवमान सोम, विविध ऋषि	७	११४	११०८
दशम मण्डल	महासूक्तीय, क्षुद्रसूक्तीय इत्यादि।	१२	१९१	१७५४
	कुल	८५	१०२८	१०५५२

आयुर्वेद(उपवेद)

सकल प्रकार के साधन के लिए शरीर मुख्य कारण है। शरीर की स्वस्थता और सबलता के बिना मनुष्य न ऐहलौकिक उन्नति कर सकता है, और न ही पारलौकिक उन्नति कर सकता है। इस कारण शारीरिक स्वस्थता का सहायक चिकित्साशास्त्ररूपी आयुर्वेद को, सबसे प्रथम माना गया है। आयुर्वेद में सृष्टिविज्ञान, शारीरिकविज्ञान, धातुविज्ञान, रोगोत्पत्तिविज्ञान, रोगपरीक्षाविज्ञान, काष्ठादिकचिकित्साविज्ञान, रसायनचिकित्साविज्ञान, अस्त्रचिकित्साविज्ञान आदि अनेक वैज्ञानिक रहस्यों का वर्णन है। सभी शास्त्र अभ्रान्त वैज्ञानिक भित्तिपर स्थित हैं। आयुर्वेद में शरीरविज्ञान को तीन प्रकार से विभाजित किया गया है वात, पित्त, कफ ये त्रिदोष हैं। वात दोष में वायु और आकाश तत्व की प्रधानता होती है, पित्त दोष में अग्नि तत्व की प्रधानता होती है और कफ दोष में पृथ्वी और जल तत्व की प्रधानता होती है।

प्राचीनकाल में महर्षियों द्वारा इस शास्त्र के अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया था, किन्तु वर्तमान में इसका शतांश भी हमें प्राप्त नहीं होता है। आयुर्वेद के तीन महत्वपूर्ण ग्रन्थ जिन्हें बृहत्रयी भी कहा जाता है – १. चरक संहिता २. सुश्रुत संहिता ३. अष्टाङ्ग हृदयम्।

1.2 यजुर्वेद एवं उपवेद (धनुर्वेद) परिचय

यजुर्वेद शब्दार्थ - यजुस् शब्द यज् धातु से निष्पन्न है, जिसके अनेकार्थ प्राप्त होते हैं –

१. इज्यते अनेन इति यजुः – जिसके द्वारा यजनादि क्रिया की जाती है वह यजुः है।

२. गद्यात्मको यजुः – ऋग्वेदादि संहिताओं के मन्त्र छन्दोबद्ध हैं, किन्तु यजुर्वेदीय मन्त्र गद्यात्मक होने के कारण इन्हें यजुस् कहा गया।

३. अनियताक्षरपादावसानं यजुः – जिन मन्त्रों के अक्षर, पाद एवं अवसान आदि अनिश्चित हों, उन्हें यजुस् कहा गया है।

यजुर्वेद की सम्प्रदाय –

यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय हैं – १. ब्रह्म सम्प्रदाय २. आदित्य सम्प्रदाय। सम्प्रदाय-परम्परा के अनुसार युगान्त के बाद कल्पारम्भ में वेद रक्षणार्थ भगवान् ने हयग्रीव अवतार धारण कर शङ्खासुर का संहार किया और वेदों को ब्रह्मदेव को प्रदान किया। ब्रह्माजी ने वेदों की रक्षा हेतु वेदराशि को दो भागों में विभाजित कर एक भाग भगवान् आदित्य को प्रदान किया, वह आदित्य सम्प्रदाय के रूप में विख्यात हुआ। एक भाग वसिष्ठ,अङ्गिरा आदि महर्षियों को अध्ययन रूप में प्रदान किया, उन्होंने अपने पुत्र-पौत्र, शिष्य-प्रशिष्यों को दिया वह कालक्रम में ब्रह्म सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आदित्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत शुक्ल यजुर्वेद तथा ब्रह्म सम्प्रदाय के अन्तर्गत कृष्ण यजुर्वेद है।

यजुर्वेद का विभाजन-

चरणव्यूहादि वाङ्मय के अनुसार यजुर्वेद की कुल १०१ शाखाएँ हैं, शाखाओं की संख्या में विभिन्नता होने पर भी अनेक विद्वानों ने यजुर्वेद की शाखाओं की संख्या १०१ स्वीकार की है। महर्षि पतञ्जलि ने भी 'एकशतमध्वर्युशाखा' कहकर यजुर्वेद की १०१ शाखाओं का उल्लेख किया है।

यजुर्वेद में दो विभाग हैं- 'शुक्ल यजुर्वेद' तथा 'कृष्ण यजुर्वेद'। चरणव्यूह के अनुसार शुक्ल यजुर्वेद की १५ व कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ हैं। विद्वानों के मत से मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग पृथक् होने से शुक्ल यजुर्वेद कहलाता है। इसी प्रकार मन्त्रभाग, ब्राह्मणभाग तथा आरण्यक भाग के मिश्रत्व के कारण कृष्ण यजुर्वेद कहा गया है।

शुक्ल यजुर्वेद- द्वापर युग में मनुष्यों की अल्प प्रज्ञा को ध्यान में रखते हुए महर्षि वेदव्यास जी ने सम्पूर्ण वेदराशि को चार भागों में विभक्त कर अपने शिष्यों पैल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु द्वारा प्रवर्तित किया। महर्षि याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन महर्षि वैशम्पायन से किया। दैवदुर्विलास से अपने गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन होने के कारण गुरु आज्ञा से अधीत विद्या का त्याग कर कालक्रम में महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने गायत्री पुरश्चरण और सूर्योपासना कर भगवान आदित्य के अनुग्रह से आदित्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत चारों वेदों को प्राप्त किया ।

आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते । (शतपथ ब्राह्मण १४.९.५.३३)

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा प्रवर्तित शुक्ल यजुर्वेद की १५ शाखाएँ –

१. काण्व	२. माध्यन्दिन	३. शापेय
४. तापनीय	५. कपोल	६. पौण्ड्रवत्स
७. आवटिक	८. परमावटिक	९. पाराशर्य
१०. वैनधेय	११. बौधेय	१२. औधेय
१३. गालव	१४. बैजवाप	१५. जाबाल

शुक्ल यजुर्वेद का स्वरूप -

शुक्ल यजुर्वेद की काण्व एवं माध्यन्दिन दो शाखाओं का अध्ययन-अध्यापन वर्तमान समय में प्रचलित है अन्य तेरह शाखाओं की अध्ययन परम्परा तथा संहिताएँ अनुपलब्ध हैं।

काण्व शाखा –

काण्व शाखा शुक्ल यजुर्वेद की प्रथम शाखा मानी जाती है। महर्षि बोधायन के पुत्र महर्षि कण्व इसके प्रथम प्रवर्तक हैं। सम्पूर्ण भारत में काण्व शाखा की दो उच्चारण पद्धतियाँ

प्रचलित हैं- काशी पद्धति एवं दाक्षिणात्य पद्धति। वर्तमान समय में काण्व शाखा का अध्ययन-अध्यापन उत्तर भारत, दक्षिण भारत, महाराष्ट्र, गुजरात, ओडिशा प्रान्त में प्रचलित है। शुक्ल यजुर्वेद काण्व संहिता में कुल ४० अध्याय, ३२८ अनुवाक, २०८६ मन्त्र हैं।

माध्यन्दिन शाखा –

शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन शाखा के प्रथम प्रवर्तक महर्षि मध्यन्दिन हैं। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता में ४० अध्याय, ३०३ अनुवाक तथा १९७५ मन्त्र हैं ।

परिशिष्ट - महर्षि कात्यायन जी ने शुक्ल यजुर्वेद के १८ परिशिष्टों का उपदेश किया है –

१. यूप लक्षण	२. छाग लक्षण	३. प्रतिज्ञा परिशिष्ट
४. अनुवाक् सङ्ख्या	५. चरणव्यूह	६. श्राद्धसूत्र
७. शुल्बसूत्र	८. ऋग्यजुष	९. पार्षद
१०. इष्टकापूरण	११. प्रवराध्याय	१२. मूल्याध्याय
१३. उञ्छशास्त्र	१४. निगम	१५. यज्ञपार्श्व
१६. हौत्रिक	१७. प्रसवोत्थान	१८. कूर्मलक्षण

इनमें से कुछ परिशिष्ट श्रौत विषयक, स्मार्त विषयक, उभयात्मक और कुछ में प्रातिशाख्य तथा शिक्षा के अवशिष्ट विषय हैं।

कृष्णयजुर्वेद परिचय

कृष्ण-यजुर्वेद की कुल ८६ शाखाएँ थी वर्तमान में केवल 4 शाखाओं की संहिताएँ उपलब्ध हैं तथा यह अध्ययन-अध्यापन परम्परा में प्रचलित हैं। (१) तैत्तिरीय शाखा (२) मैत्रायणी शाखा (३) कठशाखा और (४) कपिष्ठल शाखा।

कृष्णयजुर्वेद में संहिता, ब्राह्मण व आरण्यक एक साथ प्राप्त होते हैं। अतः **'त्रीणि मन्त्रब्राह्मणारण्यकानि यस्मिन् वेदशब्दराशौ सह तरन्ति पठ्यन्ते, असौ तित्तिरिः'** ऐसी व्युत्पत्ति कर सकते हैं। शौनकीय चरणव्यूह परिशिष्ट में यजुर्वेद का लक्षण बताते हुए इसी भाव को स्पष्ट किया गया है-

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदे त्रिगुणं यत्र पठ्यते ।

यजुर्वेदः स विज्ञेयः अन्ये शाखान्तराः स्मृताः॥

- चरणव्यूह

इस कथन का यह अभिप्राय लिया जाता है कि जहाँ मन्त्र और ब्राह्मण का एक साथ त्रिगुण पाठ (संहिता-पद-क्रम) किया जाता है, उसे यजुर्वेद जानना चाहिये।

कृष्णयजुर्वेद का कतिपय शाखाओं के नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं ।

१.चरक	२.आह्वरक	३.कठ	४.प्राच्य-कठ
५.कपिष्ठल कठ	६.चारायणीय	७. वारायणीय	८.वार्तातन्वीय
९. श्वेताश्वतर	१०.औपमन्यव	११. पाताण्डवीय	१२. मैत्रायणी
१३. मानव	१४. वराह	१५. दुन्दुश	१६. छागलेय
१७. हारिद्रवीय	१८. श्यामायन	१९. श्यामा	२०. तैत्तिरीय
२१. औख्य	२२.खाण्डिकेय	२३. आपस्तम्ब	२४. भारद्वाज
२५. हिरण्यकेशी	२६. बहु धायन	२७. सत्याषाढ	२८. क्षेत्रेय
२९. आलम्बि	३०. पलङ्ग	३१. कमल	३२. ऋचाभ
३३. आरुणि	३४. ताण्ड्य	३५. कलाप या कलापी	३६. तुम्बुरु
३७. उलप	३८. वैखानस	३९. बाधूल	४०.अग्निवेश
४१. कुडन्य	४२. हारीत	४३. ऐकेय	

तैत्तिरीय शाखा

कृष्णयजुर्वेद के प्रवर्तक वैशम्पायन के शिष्यों में तित्तिर ऋषि थे । तित्तिर का नामोल्लेख महर्षि पाणिनि ने भी किया है, अतः तित्तिर नामक ऋषि के द्वारा प्रवचन किये हुए यजुषों तथा उनके अनुयायी लोगों को तैत्तिरीय नाम दिया गया। तैत्तिरीय शाखा में मन्त्र और ब्राह्मण का मिश्रित पाठ है, अतः मन्त्र, ब्राह्मण और आरण्यक जिस शाखा या वेदभाग में सम्मिश्रित रूप में अन्तर्हित हैं, वह वेदभाग या शाखा तैत्तिरीय के रूप में व्यवहृत किया जाता है।

वर्तमान समय में तैत्तिरीय संहिता कृष्णयजुर्वेद की प्रतिनिधि संहिता है। कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता का प्रसार दक्षिण भारत में है। कुछ महाराष्ट्र प्रान्त तथा

अधिकांशतः तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, आन्ध्र, तेलंगाना प्रदेश में इस शाखा के वेदपाठी एवं अनुयायी हैं। कर्णाटक में श्रृंगेरी, मैसूरु, मत्तूरु, तमिलनाडु के कुम्भकोणम्, श्रीरङ्गम्, काञ्ची, आन्ध्र के तिरुपति, कृष्णा एवं गोदावरी नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में इस शाखा का विशेष प्रचार है। इस शाखा का संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र आदि के रूप में विशाल वाङ्मय सुरक्षित है। तैत्तिरीय संहिता में सारस्वत तथा आर्षेय के रूप में दो पाठभेद हैं। आज इस शाखा की जो संहिता उपलब्ध है, वह सारस्वत-परम्परा की मानी जाती है। इस सारस्वत परम्परा में मन्त्र-ब्राह्मण का सम्मिश्रण होने पर भी तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक अलग-अलग विभाग में प्राप्त हैं। इस परम्परा में उपलब्ध तैत्तिरीय संहिता में कुल ७ काण्ड, ४४ प्रपाठक/प्रश्न, ६५१ अनुवाक् हैं।

तैत्तिरीय-परम्परा में बौधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ जैसे आचार्यों के द्वारा तैत्तिरीय संहिता के आर्षेय पाठक्रम का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इस पाठक्रम के अनुसार यह पाँच काण्डों में विभक्त है- (१) प्राजापत्य-काण्ड, (२) सौम्य काण्ड, (३) आग्नेय-काण्ड, (४) वैश्वदेव-काण्ड (५) स्वायम्भुव काण्ड।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन काण्ड या अष्टक, २८ प्रपाठक और ३५३ अनुवाक हैं। इसमें तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त यज्ञों के प्रयोगविधि का विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त होता है ।

कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयशाखा का प्रतिपाद्य विषय

भाग	प्रतिपाद्य विषय	पञ्चाशत्-अनुवाक सङ्ख्या
प्रथमकाण्ड	दर्शपूर्णमास, अग्निष्टोम में क्रयण, पुनराधान, राजसूय आदि	१४६ अनुवाक, ३४२ पञ्चाशत् एवं १६५७२ पद
द्वितीयकाण्ड	पशुविधान, इष्टिविधान, कारीरीष्टि विधान, प्रयाजविधि आदि	७५ अनुवाक, ३८४ पञ्चाशत् एवं १९२७३ पद
तृतीयकाण्ड	पवमानग्रहों का व्याख्यान, वैकृतविधान, इष्टिविधान, जयाभ्यातान-राष्ट्रभृद्धोमविधान, आदि	५५ अनुवाक, २०६ पञ्चाशत् एवं १०६२२ पद

चतुर्थकाण्ड	अग्निचिति, देवयजन, चितिवर्णन, रुद्राध्याय, परिषेचनसंस्कार, वसोर्धारादि होममन्त्र (चमकाध्याय) आदि	८२ अनुवाक, २७९ पञ्चाशत् एवं १४०९५ पद
पञ्चमकाण्ड	उख्याग्निकथन, चित्युपक्रम, चितिनिरूपण, इष्टकात्रय-वायव्यपशु आदि निरूपण, उपानुवाक्याशिष्टकर्म निरूपण आदि	१२० अनुवाक, ४०३ पञ्चाशत् एवं १९४०४ पद
षष्ठकाण्ड	आतिथ्येष्टिविधान, अन्तर्यामग्रह, सोममन्त्रब्राह्मण निरूपण, सोमपात्रप्रशंसा	६६ अनुवाक, ३३३ पञ्चाशत् एवं १६९८१ पद
सप्तमकाण्ड	अश्वमेध, षड्रात्रादि निरूपण, सत्रकर्म निरूपण, गवामयनसत्र, ब्रह्मवर्चसहोम, अन्नहोममन्त्र आदि	१०७ अनुवाक, २५१ पञ्चाशत् एवं १२३४० पद
	कुल-	६५१ अनुवाक, २१९८ पञ्चाशत् एवं १०९२८७ पद

मैत्रायणीय शाखा -

मैत्रायणी शाखा के सम्बन्ध में हरिवंश पुराण में वर्णन प्राप्त है। पं. भगवद्दत्त के अनुसार मैत्रायण ऋषि मैत्रायणी शाखा के प्रवर्तक थे। इस शाखा के भौगोलिक क्षेत्र गुजरात और नर्मदा के उत्तरी प्रदेश थे। मानव गृह्यसूत्र की भूमिका के अनुसार यह शाखा मयूर पर्वत से लेकर गुर्जरदेश-पर्यन्त पश्चिमोत्तर कोण में फैली थी। गुजरात में मोढ ब्राह्मण इस शाखा का अनुसरण करने वाले हैं।

मैत्रायणी संहिता में भी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का पाठ प्राप्त है। इसमें ४ काण्ड एवं ५४ प्रपाठक हैं। इस शाखा का मैत्रायणीयोपनिषद् भी उपलब्ध है। मैत्रायणीय शाखा के मानव, वराह आदि श्रौतसूत्र एवं गृह्यसूत्र प्राप्त हैं।

काठक या कठ शाखा -

व्यास के शिष्य वैशम्पायन के ९ शिष्यों में औदीच्य आचार्य कठ भी थे। कठ ऋषि इस शाखा के प्रवर्तक हैं। कृष्णयजुर्वेद की कठ या काठक शाखा अत्यधिक प्रसिद्ध थी।

पतञ्जलि के अनुसार प्रत्येक ग्राम में कठ एवं कालाप शाखा का अध्ययन किया जाता था- "ग्रामे ग्रामे काठकं कालापं च प्रोच्यते" (महाभाष्य-४.३.१०१)। कठशाखीय ब्राह्मण कपिष्ठल-शाखीयों के साथ पंजाब प्रान्त में रहते थे। वर्तमान में कठ-शाखीय ब्राह्मण कश्मीर में ही उपलब्ध हैं। ब्यास नदी का तटवर्ती क्षेत्र भी इस शाखा के अध्येताओं का स्थान था, इसी कारण आज भी हरियाणा, पंजाब, कश्मीर, हिमाचल समेत समस्त उत्तर भारत में भी वेदों के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास है। इस शाखा की संहिता, ब्राह्मण, कठोपनिषद्, गृह्यसूत्र आदि उपलब्ध हैं। काठक-गृह्यसूत्र को लोगाक्षि गृह्यसूत्र के नाम से अभिहित किया जाता है।

काठक संहिता में ५ खण्ड, ४० स्थानक, १३ अनुवचन, ८४३ अनुवाक् तथा ३०९३ मन्त्र हैं। काठक संहिता में दर्शपूर्णमास, ज्योतिष्टोम, उपस्थानादि यजमान-कर्म, आधान, काम्य-इष्टि आदि विभिन्न यागों का वर्णन है।

कपिष्ठल-कठ शाखा -

कपिष्ठल-कठ शाखा का सम्बन्ध कठ शाखा से है। चरणव्यूह में चरक शाखा के अन्तर्गत कठ, प्राच्य कठ, तथा कपिष्ठल-कठ उपशाखाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। कपिष्ठल शाखा का प्रसार कपिष्ठल देश (वर्तमान में कैथल-हरियाणा) में होने के कारण 'कपिष्ठल' शाखा कहलाई। इस शाखा के प्रवर्तक ऋषि का उल्लेख नहीं है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में गोत्रवाची कपिष्ठल शब्द का उल्लेख "कपिष्ठलो गोत्रे च" इस सूत्र में किया है। कठ शाखा के ब्राह्मण अपने अवान्तर कपिष्ठलों को लेकर ग्रीक आक्रमण के समय पञ्जाब में रहते थे। वहाँ से आगे बढ़कर कुछ लोग कश्मीर में जा बसे।

यह संहिता अष्टक एवं अध्यायों और वर्गों में विभक्त है। संहिता के केवल प्रथम, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अष्टक उपलब्ध हैं। द्वितीय और तृतीय अष्टक उपलब्ध नहीं हैं। कपिष्ठल-कठ शाखा के गृह्यसूत्र की अपूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त है।

धनुर्वेद(उपवेद)

मनोविज्ञान, शरीरविज्ञान, मन्त्रविज्ञान, लक्ष्यसिद्धि, अस्त्र-शस्त्रविज्ञान, युद्धविज्ञान आदि अनेक विषयों का वर्णन धनुर्वेद के ग्रन्थों में था। धनुर्वेदशास्त्र स्वधर्मरक्षा, जातिगत

जीवनरक्षा, शान्तिरक्षा स्वदेशरक्षा आदिका प्रधान सहायक है और आधिभौतिक मुक्ति अर्थात् जातिगत स्वाधीनतारूपी मुक्ति प्राप्त करने का तो यह शास्त्र एकमात्र अवलम्बन है। इस शास्त्र के अनेकों ग्रन्थ पूर्वकाल में प्रचलित थे किन्तु वर्तमान में एक भी सम्पूर्ण ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता।

1.3 सामवेद एवं उपवेद(गन्धर्ववेद) परिचय

सामवेद का सम्बन्ध उपासना से है। सामवेद गायन की दृष्टि से वेदों में प्रमुख है। छान्दोग्य उपनिषद् ने गायन के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि गद्य, पद्य और गायन में गायन ही सर्वाधिक प्रभावी तथा मनोहारी होता है, इसमें भी साधारण गद्य की अपेक्षा छन्द का, छन्द की अपेक्षा काव्य का, काव्य की अपेक्षा गायन का वैशिष्ट्य अधिक है। गायन में भी गानों का आलाप विशेष प्रभाव को उत्पन्न करता है। भारतीय संगीत परम्परा विशेषतः सप्त स्वरों का मूल सामवेद है।

'साम' शब्द का अर्थ

"षोऽन्तकर्मणि" धातु से उणादि "मनिन्" प्रत्यय के जुडने से 'साम' शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है- "**स्यन्ति खण्डयन्ति दुःखानि येन तत् साम**" अर्थात् जो दुःखों का अन्त करके मन को शान्त करे, वह 'साम' है। सामवेद के पाठ और सामगान श्रवण करने से मन प्रसन्न होता है, यह विचार साम शब्द की व्युत्पत्ति से ही स्पष्ट है।

शास्त्रों के अनुसार 'साम' शब्द मुख्यतया तीन अर्थों में जानना चाहिए-

गीतिषु सामाख्या - गीतियों का नाम साम है। (जैमिनि सूत्र २.१.३६)

या ऋक् तत् साम - ऋक् का नाम साम है। (छान्दोग्योपनिषद् १.३.४)

ऋच्यध्यूढं साम – ऋचाओं पर अधिरूढ गेय मन्त्र साम कहलाता है। (छान्दोग्योपनिषद् १.६.१)

सामवेदीय शाखाएँ –

प्राचीन वाङ्मय में सामवेद की हजार शाखाएँ या मार्ग (गानविधा) कहे गये हैं- महर्षि जैमिनि ने "साम वै सहस्रवर्त्मनि" तथा महर्षि पतञ्जलि ने "सहस्रवर्त्मा सामवेदः" (महाभाष्य पस्पशाह्निक) कहकर सामवेद की एक हजार शाखाओं का उल्लेख किया है।

आचार्य शौनक ने चरणव्यूह ग्रन्थ में तेरह शाखाओं का उल्लेख किया है। वर्तमान समय में मात्र तीन ही शाखाएँ प्राप्त होती हैं- कौथुम, राणायनीय, तथा जैमिनीय शाखा। कौथुम तथा राणायनीय शाखाएँ गानविधा और उच्चारण भेद से ही भिन्न हैं, जबकि जैमिनीय शाखा में मन्त्रों की संख्या और क्रम में भी भिन्नता प्राप्त होती है।

सामवेद का विभाजन

'साम' शब्द में ही सामवेद के दो प्रमुख घटकों का ज्ञान निहित है। साम, गीतियों और ऋचाओं का अभिधान है- "**गीतिषु सामाख्या**" "**या ऋक् तत् साम**" । इस प्रकार से सामवेद दो प्रमुख भागों में विभक्त है- ऋचा और गान (साम), जो क्रमशः आर्चिक (ऋचाओं से सम्बद्ध) और गान के रूप में जाना जाता है।

आर्चिक- 'आर्चिक' शब्द ऋचाओं के समूह का द्योतक है। आर्चिक के दो भाग हैं- पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में छः प्रपाठक हैं, प्रत्येक प्रपाठक दो अर्धों में विभक्त है, तथा प्रत्येक अर्ध में पाँच दशति होती हैं। दशति में प्रायः दस मन्त्र होते हैं, कहीं यह सङ्ख्या न्यूनाधिक होती है। पूर्वार्चिक में आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान तथा आरण्यक पर्व हैं। परिशिष्ट में महानाम्नी पर्व भी प्राप्त होता है। पूर्वार्चिक में छः प्रपाठक तथा ६५० मन्त्र हैं।

उत्तरार्चिक का स्वरूप यागोपयोगी है। इसमें प्रगाथ और तृच सूक्तों का समूह है। इसमें नौ प्रपाठक हैं। प्रथम पाँच प्रपाठकों में दो-दो प्रपाठकार्ध और अन्तिम चार में तीन-तीन प्रपाठकार्ध हैं। उत्तरार्चिक में कुल मन्त्र सङ्ख्या १२२५ है। इस प्रकार सामवेद आर्चिक संहिता में १८७५ मन्त्र हैं।

सम्पूर्ण ऋक् संख्या - १८७५	
पूर्वार्चिक	मन्त्र अनुक्रम
आग्नेय काण्ड	१-११४
ऐन्द्र काण्ड	११५-४६६
पवमान काण्ड	४६७-५८५
आरण्य काण्ड	५८६-६४०
महानाम्न्यार्चिक	६४१-६५०

उत्तरार्चिक	६५१-१८७५

सामवेदीय गान भाग -

गान वस्तुतः दो प्रकार के हैं- १. प्रकृतिगान २. विकृतिगान।

प्रकृतिगान के भी दो भाग हैं- ग्रामेगेय गान (वेयगान) तथा अरण्यगेय (आरण्यक) गान, जैसा कि नाम से स्पष्ट है- ग्रामेगेय का गान ग्रामों तथा नगरों में और अरण्यगेय का गान वनों में होता था। प्रकृतिगान सप्तगानात्मक है, जिसमें से प्रथम चार गान (गायत्र, आग्नेय, ऐन्द्र और पवमान) ग्रामेगेयगान के अन्तर्गत हैं और अरण्यगेय गान के अर्क, द्वन्द्व और व्रत- ये तीनों पर्व मिलकर एक गान माने जाते हैं। प्रकृतिगान का षष्ठ गान है- शुक्रियपर्व और महानाम्नी सप्तम गान, जो परिशिष्ट के रूप में मान्य है, जैसा कि सर्वानुक्रमणी में कहा गया है-

"गायत्रं प्रथमं गानम् आग्नेयं तु द्वितीयकम्।
तृतीयमैन्द्रं गानं स्यात् पावमानं चतुर्थकम्॥
अर्कद्वन्द्वव्रतं चेति त्रीणि पर्वाणि पञ्चमम्।
षष्ठं च शुक्रियं गानं महानाम्नीति सप्तमम्॥
एतानि सप्तगानानि प्रकृतेः कथितानि च।"

(ग्रामेगेयगान भूमिका पृष्ठ सं. ३)

विकृति गान -

विकृति गान दो प्रकार का है- ऊह तथा ऊह्यगान (रहस्य)। ऊहगान में सात पर्व हैं- दशरात्र, संवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त और क्षुद्रपर्व। ऊह्यगान में भी सात ही पर्व हैं और नामकरण भी ऊह की ही भाँति हुआ है। ऊहगान २३ प्रपाठकों और ऊह्यगान १६ प्रपाठकों में विभक्त है।

गानभाग	सङ्ख्या
गायत्र गान	१

ग्रामेगेय गान	११९७
आरण्यक गान	२९६
ऊहगान	९३६
ऊह्यगान (रहस्यगान)	२०९
कुल गान	२६३९

ऊह और ऊह्यगानों की व्यवस्था वस्तुतः सोमयागों के अनुरूप है। इस क्रम से यज्ञों में उद्गातृ-मण्डल इनका गान करता है। 'ऊह' और ऊह्य का अर्थ है विचारपूर्वक विन्यास। ऊहगान में आने वाले सभी सामों के आधारभूत साम प्रकृतिगान में तथा ऊह्यगान में आने वाले सभी सामों के आधारसाम (योनिगान) आरण्यकगान में हैं। याग में उद्गातृ-मण्डल के विभिन्न सदस्यों के द्वारा अपनी-अपनी गानभक्ति का विचारपूर्वक गान ऊह का एक प्रकार है। इसी प्रकार निधन भाग (गान मन्त्र का अन्तिम पद) के सम्बन्ध में भी यथास्थान विचार-विन्यास ऊहन-प्रक्रिया के अन्तर्गत है। कौथुम और राणायनीय शाखाओं में गान संख्या एक ही है, परन्तु जैमिनीय में गान संख्या भिन्न है।

गान	कौथुम/राणायनीय	जैमनीय
ग्रामेगेय (प्रकृति)	११९७	१२३२
अरण्यगेय (आरण्यक)	२९५	२९१
ऊह	१०२६	१८०२
ऊह्य (जैमिनीय- ऊषाणी)	२०५	३५६
कुल योग	२७२२	३६०१

गान्धर्ववेद (उपवेद)

गान्धर्ववेद के कई लौकिकग्रन्थ मिलते हैं और दो चार आर्षग्रन्थ भी छिन्न विच्छिन्नदशामें मिलते हैं। जिस प्रकार आयुर्वेदसे शरीरका सम्बन्ध है उसी प्रकार मन के साथ गान्धर्ववेद का सम्बन्ध है। सङ्गीत की सहायता से मन स्वस्थ और बलशाली होता है। भगवान कहते हैं:- **वेदानां सामवेदोऽस्मि** । मैं वेदों में सामवेद हूं। ऐसा कहकर जो सामवेद

की प्रधानता दर्शायी गई है वह गान्धर्ववेद की सहायता से है। उपासनाकाण्ड सम्बन्धी शास्त्रों ने सङ्गीत की महिमा को सर्वोपरि दर्शाया है:-

पूजाकोटिगुणं स्तोत्रं स्तोत्रात्कोटिगुणो जपः।

जपात्कोटिगुणं गानं गानात् परतरं न हि॥

1.4 अथर्ववेद एवं उपवेद(स्थापत्यवेद) परिचय

अथर्व शब्द थुर्वी धातु से निष्पन्न है। थुर्वी धातु का हिंसा अथवा गति के अर्थ में प्रयोग है। '**न थर्वः-अथर्वः**' अथर्व का तात्पर्य अहिंसा अथवा स्थिरता से है। व्याकरण महाभाष्य के अनुसार "**नवधा अथर्वणः**" अर्थात् अथर्ववेद की नौ शाखाएँ हैं- पैप्पलाद, शौनक, तौद, मौद, जाजल, जलदा, ब्रह्मवदा, चारणवैद्य और देवदर्श।

वर्तमान में अथर्ववेद की दो शाखाएँ उपलब्ध हैं- शौनक और पैप्पलाद। दोनों में २०-२० काण्ड हैं। अथर्ववेद शौनक शाखा में क्रमशः सूक्त, अनुवाक, प्रपाठक, काण्ड इस प्रकार का विभाजन है। कुल सूक्तों की संख्या ७३१ है। अनुवाकों की संख्या १११, प्रपाठकों की संख्या ३६ है। २० काण्डों में कुल ५९८७ मन्त्र हैं। अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा में २० काण्ड, ९२३ सूक्त, १६१ अनुवाक और ७८५० मन्त्र हैं। इनमें मन्त्रों का विभाजन क्रम एक विशिष्ट शैली का है। प्रथम काण्ड से पञ्चम काण्ड तक प्रत्येक सूक्त लगभग ४ से १४ मन्त्र के हैं। षष्ठ काण्ड से १५ काण्ड तक ६ से १६ मन्त्र का सूक्त है । १६ से २० काण्ड तक बड़े-बड़े सूक्तों का सङ्कलन है। जिसमें १० से २९ मन्त्र का सूक्त है।

अथर्ववेद भाष्य के मङ्गलाचरण में सायणाचार्य जी का वाक्य है-

व्याख्याय वेदत्रितयम् आमुष्मिकफलप्रदम्।

ऐहिकामुष्मिकं चतुर्थं व्याचिकीर्षति ॥

आमुष्मिक के साथ हमारे ऐहिक जीवन में जो कुछ भी इष्ट है उसकी प्राप्ति एवं जो अनिष्ट है उसके परिहार हेतु अथर्ववेद में काण्डगत अनेक विषयों से सम्बन्धित सूक्तों की प्राप्ति होती है, जिसमें निम्नलिखित प्रमुख विषय हैं -

प्रथम काण्ड - मेधाजनन, अपां भेषजम्, ज्वर नाशन, रोग उपशमन, नारी सुखप्रसूति, विद्युत, पुष्टि कर्म, रुधिर रोकने और स्राव ठीक करने हेतु धमनीबन्धन, अलक्ष्मीनाशन, श्वेतकुष्ठ नाशन, राष्ट्र का अभिवर्धन, मधुविद्या आदि।

द्वितीय काण्ड - सुरक्षा, पशुओं का संवर्धन, क्रिमियों का नाशन, बल की प्राप्ति, अभय की प्राप्ति, विश्वकर्मा आदि।

तृतीय काण्ड - शत्रु-सेना का सम्मोहन, स्वराज्य में राज्य की पुनः स्थापना, राष्ट्र का राजा और शासन करने वाला, राष्ट्रधारण, रायस्पोष प्राप्ति, शालानिर्माण, व्यापार, कृषि, वनस्पति, रयि संवर्धन, समृद्धि प्राप्ति, आत्मरक्षा, पशुपोषण, सांमनस्य आदि ।

चतुर्थ काण्ड - सर्पविषनाशन, गर्भाधान, रक्षोघ्न, कुष्ठ-तक्म-नाशन, लाक्षा, वृषरोग-शमन, शत्रुसेना त्रासन, अग्नि, नवशालाघृतहोम।

षष्ठ काण्ड - अक्षिरोगभैषज, गर्भदृंहण, बलासनाशन, केशवर्धनी औषधि, अरिष्टक्षयण, अभय, परस्परचित्तैकीकरण, सर्पों की रक्षा, जलचिकित्सा, अन्नचिकित्सा, संग्रामजयः, विषदूषण, पिप्पलीभैषज्य, सौभाग्यवर्धन, अन्नसमृद्धि ।

सप्तम काण्ड - सरस्वती, दुःस्वप्ननाशन, गण्डमाला चिकित्सा, राष्ट्रसभा, अमावास्या-पूर्णिमा।

अष्टम काण्ड - दीर्घायु की प्राप्ति, औषधियाँ, विराट॥

नवम काण्ड - मधुविद्या, शाला, अतिथिसत्कार, गौ।

दशम काण्ड - सर्पविष दूरीकरण, मणिबन्धन, विजयप्राप्ति, वशा गौ।

एकादश काण्ड - ब्रह्मौदन, रुद्र, प्राण, ब्रह्मचर्य।

द्वादश काण्ड - भूमि सूक्त से सम्बन्धित है इसके साथ गौ का भी वर्णन प्राप्त होता है।

त्रयोदश काण्ड - अध्यात्म प्रकरण के नाम से जाना जाता है।

चतुर्दश काण्ड - विवाह प्रकरण की विशेषता से प्रसिद्ध है।

पञ्चदश काण्ड - व्रात्य काण्ड भी कहते हैं, व्रात्य शिव का नाम है।

षोडश काण्ड - सभी प्रकार के दुःखों से निवृत्ति हेतु विषय वर्णित है।

सप्तदश काण्ड - सभी प्रकार के अभ्युदय की कामना हेतु सूर्य आराधना के मन्त्र इस काण्ड में प्राप्त होते हैं।

अष्टादश काण्ड - यह पितृमेध अर्थात् पितरों से सम्बन्धित काण्ड है। पितृशान्ति, पितरों के आशीर्वाद प्राप्ति हेतु यह काण्ड है।

एकोनविंशति काण्ड - पुरुष सूक्त, नक्षत्र सूक्त, शान्ति सूक्त, काल सूक्त, औदुम्बर मणि, दर्भ मणि, शङ्खमणि, शतवार मणि, जङ्गिड मणि, अस्तृत मणि, वेदमातासूक्त।

विंश काण्ड - सोमयाग से सम्बन्धित सूक्त प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार लौकिक ज्ञान विज्ञान की विपुल सामग्री इस वेद में उपलब्ध होती है।

उपवेद (स्थापत्यवेद, शिल्पवेद, अर्थशास्त्र)

स्थापत्यवेद में नानाप्रकार के शिल्प, कला और पदार्थविद्या का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें पशुविद्या, प्रस्तर- विद्या, लोहादिक कठिन धातु और सुवर्णादि कोमल धातु की उपयोगी विद्याएँ, वनस्पतिविज्ञान, नानाप्रकारके याननिर्माणकी विद्या, भूमि के अन्तर्गत पदार्थ और जलनिराकरण की विद्या, कृषिविद्या, नाना वस्त्र आभूषण तथा रत्नों से सम्बन्धित शिल्पविद्या, आकाशतत्त्व विद्या, वायुतत्त्वविद्या, अग्नितत्त्वविद्या आदि अनेक लोकोपकारी शिल्प तथा पदार्थविद्याओं का विकास भलीभाँति हुआ था, इसका प्रमाण वर्तमान ध्वंसावशेष चिह्न हैं और प्राचीन पुस्तकों से भी यह भलीभाँति परिज्ञात होता है। भारत की शिल्पोन्नति ही इसका कारण है।

वेद	उपलब्ध शाखा	ब्राह्मण	उपनिषद्	शिक्षा-प्रातिशाख्य	विशिष्ट विवरण
ऋग्वेद	शाकल शांखायन	ऐतेरय ब्राह्मण शांखायन ब्राह्मण	ऐतरेय उपनिषद् कौषीतकि उपनिषद्	पाणिनीय शिक्षा ऋक्प्रातिशाख्य	विषय- शस्त्र (एक श्रुति से पाठ करने वाली ऋचाएँ)/स्तुति ऋत्विक- होता मण्डल-१०, सूक्त-१०२८, अष्टक- ८,

वेद	उपलब्ध शाखा	ब्राह्मण	उपनिषद्	शिक्षा-प्रातिशाख्य	विशिष्ट विवरण
					वर्ग-२०२४ आचार्य-पैल, देवता- अग्नि, उपवेद- आयुर्वेद
शुक्ल यजुर्वेद	काण्व एवं माध्यन्दिनीय	काण्व-शतपथ ब्राह्मण माध्यन्दिन-शतपथ ब्राह्मण	ईशावास्योपनिषद् (संहिता का ४०वाँ अध्याय) बृहदारण्यकोपनिषद्	याज्ञवल्क्य शिक्षा, वाजसनेयि प्रातिशाख्य	विषय- याग ऋत्विक्- अध्वर्यु माध्यन्दिन – अध्याय ४०, अनुवाक – ३०३ मन्त्र – १९७५ काण्व - अध्याय – ४० अनुवाक – ३२८ मन्त्र - २०८६ आचार्य-वैशम्पायन देवता- वायु उपवेद- धनुर्वेद
कृष्ण यजुर्वेद	तैत्तिरीय मैत्रायणी कठ कपिष्ठल	तैत्तिरीय ब्राह्मण	तैत्तिरीय मैत्रायणी श्वेताश्वतरोपनिषद् कठोपनिषद्	माण्डव्य, भारद्वाज, वासिष्ठी, व्यास, अवसाननिर्णय, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य	काण्ड – ७ प्रपाठक/प्रश्न – ४४ अनुवाक – ६५१ पञ्चाशत् - २१९८
सामवेद	कौथुम राणायनीय जैमिनीय	पञ्चविंश (ताण्ड्य) षड्विंश,सामविधान आर्षेय,मन्त्र (छान्दोग्य) देवताध्याय,वंश संहितोपनिषद् जैमिनीय ब्राह्मण जैमिनीयोपनिषद्-तलवकार ब्राह्मण	छान्दोग्य उपनिषद् केनोपनिषद्	नारदीया, गौतमी, लोमशी, पुष्पसूत्र, ऋक्तन्त्र, सामतन्त्र, अक्षरतन्त्र	विषय- गान(ऋचाओं का गान)/उपासना ऋत्विक- उद्गाता मन्त्र- १८७५ (ऋक्) आचार्य- जैमिनि देवता- सूर्य उपवेद- गन्धर्ववेद

वेद	उपलब्ध शाखा	ब्राह्मण	उपनिषद्	शिक्षा-प्रातिशाख्य	विशिष्ट विवरण
अथर्ववेद	पैप्पलाद शौनक	गोपथ ब्राह्मण	प्रश्नोपनिषद् मुण्डकोपनिषद् माण्डूक्योपनिषद्	माण्डूकी शिक्षा अथर्वप्रातिशाख्य चतुराध्यायिका	विषय- प्रायश्चित्त विधान ऋत्विक- ब्रह्मा काण्ड – २० मन्त्र- ५९८७ आचार्य- सुमन्तु देवता- सोम

महर्षिसान्दीपनिराष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठानम्, उज्जयिनी
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

इकाई 2 – आयुर्वेद का इतिहास एवं परम्परा

02.01 आयुर्वेद का इतिहास

आयुर्वेद एक अनादि एवं शाश्वत जीवन विज्ञान शास्त्र है, जिसमें धर्म अर्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्विध पुरुषार्थ के मूल साधनभूत आरोग्य का प्रतिपादन किया गया है। आयुर्वेद में प्रतिपादित सिद्धान्त इतने सामान्य, व्यापक, जनजीवनोपयोगी एवं सर्वसाधारण के लिए हितकारी हैं कि सरलता पूर्वक उन्हें अमल में लाकर यथाशीघ्र आरोग्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अतः शारीरिक, मानसिक, एवं बौद्धिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आयुर्वेद की उपयोगिता सुविदित है। आयुर्वेद केवल चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है, अपितु यह शरीर विज्ञान, मानव विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, आचारशास्त्र एवं धर्मशास्त्र का एक ऐसा अद्भुत समन्वित स्वरूप है जो सम्पूर्ण जीवन के अन्यान्य पक्षों को व्याप्त कर लेता है। अतः निःसन्देह यह एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है। आयुर्वेद शास्त्र केवल भौतिक तत्वों तक ही सीमित नहीं है, अपितु आध्यात्मिक तथ्यों के विवेचन में भी अपनी मौलिक विशेषता रखता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के आद्य स्रोत वेद तथा उपनिषद् के बीज ही आयुर्वेद में प्रसार को प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त समकालीन होने के कारण दर्शनशास्त्र एवं धर्मशास्त्र ने भी आयुर्वेद के अध्यात्म सम्बन्धी कतिपय सिद्धान्तों को प्रभावित किया है। शरीर के साथ साथ प्राण तत्व का विवेचन, आत्मा और मन के विषय में स्वतन्त्र दृष्टिकोण मानसिक व बौद्धिक विकास क्रम का यथोचित वर्णन आयुर्वेद की वैज्ञानिकता एवं प्रामाणिकता के सबल प्रमाण हैं।

आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति

आयुर्वेद एक ऐसा शास्त्र है जिसमें जीवन के आध्यात्मिक, भौतिक, मानसिक और बौद्धिक पक्षों पर चिन्तन करते हुए शरीर और मन की बाधाओं के निराकरण का युक्ति संगत उपाय सुझाया गया है। यह शास्त्र जीवन के साथ तादात्म्य भाव स्थापित कर उसकी प्राकृत

और वैकारिक अवस्थाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अतः यथार्थतः यह एक जीवन शास्त्र है। आयु ही जीवन है, आयु का वेद (ज्ञान) ही आयुर्वेद है, अतः यह एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है। शास्त्रों में आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति (व्युत्पत्ति) निम्न प्रकार से मिलती है- "**आयुर्वेदयति बोधयति इति आयुर्वेदः**" अर्थात् यह शास्त्र आयु का वेदन (बोध) या ज्ञान कराता है, अतः यह आयुर्वेद कहलाता है। इसमें उत्तर पद 'विद् ज्ञाने' धातु से निष्पन्न है। अर्थात् ज्ञान अर्थ में प्रयुक्त 'विद्' धातु से वेद शब्द बना है। इसी प्रकार आचार्य उल्हण भी ज्ञानार्थक विद् धातु से आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति निम्न प्रकार करते हैं- "**आयुर्विद्यते ज्ञायतेऽनेनेति आयुर्वेदः** । "- आयु इससे जानी जाती है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। यहां विद्यातु ज्ञानार्थक है। "**आयुर्विद्यते विचार्यतेऽनेन वेत्यायुर्वेदः** ।" - आयु का इसके द्वारा विचार (विवेचन) किया जाता है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। यहाँ विचारणा अर्थ में विद् धातु का प्रयोग है। **आयुरस्मिन् विद्यते, अनेन वाऽऽयुविन्दतीत्यायुर्वेदः ।**" – (सुश्रुत संहिता, सुत्रस्थान १/१५) - प्रतिपाद्य विषय के रूप में आयु इसमें विद्यमान है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। यहाँ सत्ता के अर्थ में (विद् सत्तायां) विद् धातु का प्रयोग है। अथवा इससे पुरुष आयु को प्राप्त करता है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। यहाँ "विदुल् लाभे"- लाभार्थक विद् धातु है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयुक्त 'विद्' धातु से निष्पन्न आयुर्वेद शब्द की व्युत्पत्ति शास्त्रों में वर्णित है। व्याकरण शास्त्र में 'विद्' धातु भिन्न भिन्न गणों में भिन्न भिन्न अर्थों में प्रतिपादित है। तदनुसार यहां भी भिन्न भिन्न अर्थ में आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति बतलाई गई है। काश्यप संहिता में इस विषय में महत्वपूर्ण वक्तव्य प्राप्त होता है- "**भो, तत्रायुर्जीवितमुच्यते, विद् ज्ञाने धातुः विद्लृ लाभे च, आयुरनेन ज्ञानेन विद्यते. ज्ञायते विन्वते लभ्यते नरिष्यतीत्यायुर्वेदः** । (विमान स्थान) - यहाँ आयु से जीवन अभिप्रेत है। विद् ज्ञानार्थक धातु में और विद्लृ लाभार्थक (प्राप्ति) धातु में प्रयुक्त होने से आयु इस ज्ञान के द्वारा जानी जाती है या प्राप्त की जाती है, अतः यह आयुर्वेद कहलाता है।

आयुर्वेद की व्यापकता और उसको प्रकट करने की दृष्टि से विद् धातु के निम्न सभी अर्थ ग्रहण किए जाते हैं-

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे ।

विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात् ॥

इसके अनुसार निम्न प्रकार से आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति की जा सकती है- **यस्मिन् शास्त्रे आयुर्विद्यते येन वा आयुर्विन्दति स आयुर्वेदः** ।"- जिस शास्त्र में आयु का विषय अर्थात् स्वरूप प्रतिपादित किया गया हो, जिस शास्त्र का अध्ययन करने से आयु सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है अथवा जिस शास्त्र के विषय में विचार करने से हितकर आयु, अहितकर आयु, सुखकर आयु और दुःखकर आयु के विषय में जानकारी प्राप्त होती है अथवा जिस शास्त्र में बताए हुए नियमों का पालन करने से दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है उसका नाम आयुर्वेद है। "**आयुर्वेदयति ज्ञापयति प्रकृतिज्ञान रसायनदूतारिष्टायुपदेशादित्यतोऽप्यायुर्वेदः** स्वस्थ और अस्वस्थ मनुष्य की प्रकृति, रसायन, शुभ और अशुभ बताने वाले दूत और अरिष्ट लक्षण इत्यादि के उपदेशों से जो शास्त्र आयु का विषय अर्थात् यह मनुष्य स्वल्पायु है अथवा मध्यमायु है या दीर्घायु है- इन सब विषयों का ज्ञान करा देता है, यही आयुर्वेद है।

आयुर्वेद की परिभाषा

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।

मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः' स उच्यते ॥

- चरक संहिता, सूत्रस्थान १/४१

- जिस शास्त्र में हित आयु, अहित आयु, सुख आयु, दुःख आयु इन चार प्रकार की आयु के लिए हित (पच्य) अहित (अपथ्य), इस आयु का मान (प्रमाण और अप्रमाण) तथा आयु का स्वरूप प्रतिपादित हो वह आयुर्वेद कहलाता है।

आयुर्वेदाहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।

विद्यते यत्र विद्वद्भिरायुर्वेदः स उच्चते ॥

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च ।

तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥

- भाव प्रकाश

आयु के लिए कौन सी वस्तु लाभदायक है या किस वस्तु के द्वारा आयु की हानि हो सकती है ? किस प्रकार की आयु हितकर होती है और कैसी आयु अहितकर होती है? यह विषय जिस शास्त्र में वर्णित हो तथा रोग का निदान और उसके प्रतिकार के विषय में जिस शास्त्र में वर्णन किया गया हो विद्वानों के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है। इस शास्त्र के द्वारा पुरुष चूंकि आयु को प्राप्त करता है तथा आयु के विषय में जान लेता है, इसलिए मुनिश्रेष्ठों के द्वारा यह आयुर्वेद कहलाता है। तात्पर्य यह है कि इस शास्त्र का यदि ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है तो मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त करने का उपाय ज्ञात हो जाता है। क्योंकि इस शास्त्र में बतलाए हुए आहार-विहार सम्बन्धी नियमों और अन्य सदाचारों का पालन करने से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है। इसीलिए ऋषिगणों, आचार्यों और विद्वानों ने इस शास्त्र को आयुर्वेद के नाम से अभिहित किया है।

आयुर्वेदव्युत्पत्ति

जिस शास्त्र में-हितमय, अहितमय, सुखमय, दुःखमय, शरयु? तथा आयु के लिए हितकर अहितकर द्रव्य, गुण, कर्म; आयु का प्रमाण एवं लक्षण द्वारा (आयु का) वर्णन होता है-उसी नाम आयुर्वेद है।

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।

नित्यगश्चानुबन्धस्य पर्यायैरायुरुच्यते ।।४१॥

शरीर, इन्द्रिय, मन तथा आत्मा के संयोग को ही आयु कहते हैं तथा इसके धारि, जीवित, नित्यग, शर अनुबन्ध; ये पर्यायवाची शब्द हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा को परस्पर धारण करने का स्वभाव होने के कारण आयु को 'धारि' कहते हैं। जब तक चेतन शरीर व आयु के होने पर इसे 'नित्यग' कहते हैं, अर्थात् शरीर नित्य प्रतिक्षण गमनशील

शिथिल होता रहता है अतः इसे 'नित्यग' तथा अपरापर शरीर के साथ सम्बन्ध होने पर इसे 'अनुबन्ध' भी कहते हैं।

तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः।
वच्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितः।।४२।।

उस आयु का वेद अर्थात् आयुर्वेद शास्त्र परम पुण्य जनक है ऐसा वेदपुरुषों के वचन हैं क्योंकि यह शास्त्र मनुष्यों को दोनों लोक अर्थात् इहलोक और परलोक में हितकर है। यह अम्युदय तथा निःश्रेयस दोनों को देनेवाला है। अतः इस शास्त्र का वर्णन किया जाता है। अन्यत्र कहा भी है-

आरोग्यदानात्परमं न दानं विद्यते क्वचित्।
अतो देयो रुजार्त्तानामारोग्यं भाग्यवृद्धयें।।
औषधं स्नेहमाहारं रोगिणां रोगशान्तये।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च।।

सौरपुराण में भी-

रोगिणो रोगशान्त्यर्थमौषधं यः प्रयच्छति।
रोगहीन: स दीर्घायुः सुखी भवति सर्वदा ।।

नन्दिपुराण में-

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं साधनं यतः ।
अतस्त्वारोग्यदानेन नरो भवति सर्वदः ॥

स्कन्दपुराण में-

ब्रह्मक्षत्रियविड्शुद्रान् रोगार्त्तान् परिपाल्य च।
यत्पुण्यं महदाप्राप्नोति न तत्सर्वैर्महामखैः ॥
तस्माद्भोगापवर्गार्थं रोगार्त्तं समुपाचरेत्॥

योऽनुगहीतमात्मानं मन्यमानो दिने दिने।

उपसर्पेत रोगार्त्तांस्तीर्यस्तेन भवार्णवः ॥

तन्त्रान्तर में भी-

कचिद्धर्मः कचिन्मैत्री कचिदर्थः कचिद्यशः ।

कर्माभ्यास: कचिचेति चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥।

चरक ने भी कहा है-

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

रोगास्तस्यापहर्त्तार: श्रेयसो जीवितस्य तु ॥

सुश्रुत में भी कहा है-

समानत्वाद्विवेदानामक्तरत्वात्तथैव च।

तथा दृष्टफलत्वाच हितत्वादपि देहिनाम्॥

वाक्समूहाथविस्तारात् पूजितत्वाच्च देहिमिः।

चिकित्सितात्पुण्यतम न किश्चिदपि शुश्रुम ॥

संक्षेपतः इन उद्धरणों का अभिप्राय यह है कि - आयुर्वेद का यथाविधि अध्ययन कर चिकित्सा करने से मनुष्य अनन्त पुण्य का भागी होता है। तथा आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन करके जिस प्रकार मनुष्य दूसरों को आरोग्यप्रदान करता है, उसी प्रकार स्वयं भी नीरोग रहता हुआ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इस चतुर्विध पुरुषार्थ को प्राप्त करता है ।।४२।।

02.03 आयुर्वेद की ग्रन्थ परम्परा

अथ मैत्रीपरः पुण्यमायुर्वेदं पुनर्वसुः ।

शिष्येभ्यो दत्तवान् षड्भ्यः सर्वभूतानुकम्पया ॥

अग्निवेशश्च भेलश्च जतूकर्णः पराशरः ।

हारीतः क्षारपाणिश्च जगृहुस्तन्मुनेर्वचः ॥ (चरक)

बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं मुनेः ।

तन्त्रस्य कर्ता प्रथममग्निवेशो यतोऽभवत् ॥ (चरक)

चरकस्सुश्रुतश्चैव वाग्भटश्च तथापरः ।

मुख्याश्च संहिता वाच्यास्तिस्र एव युगे युगे ॥ (हारीतसंहिता)

अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंकृते ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥ (दृढबलसंहिता)

निदाने माधवः श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः ।

शरीरे सुश्रुतः श्रेष्ठः चरकस्तु चिकित्सिते ॥

अष्टाङ्गसङ्ग्रहे ज्ञाते वृथा प्राक्तन्त्रयोः श्रमः ।

अष्टाङ्गसङ्ग्रहेऽज्ञाते वृथा प्राक्तन्त्रयोः श्रमः ॥

यदि चरकमधीते तत् ध्रुवं सुश्रुतादि

प्रणिगदितगदानां नाममात्रेऽपि बाह्यः ।

अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः

किमिव खलु करोति व्याधितानां वराकः॥ (अष्टाङ्गहृदयम्)

सुश्रुतं न श्रुतं येन किमन्यैः बहुभिः श्रुतैः ।

नालोकि चरकं येन स वैद्यो वैद्यनिन्दितः ॥ (क्षेमकुतूहलम्)

अश्विनौ देवभिषजौ यज्ञवाहाविति स्मृतौ ।

यज्ञस्य हि शिरश्छिन्नं पुनस्ताभ्यां समाहितम् ॥

प्रशीर्णा दशनाः पूष्णोः नेत्रे नष्टे भगस्य च ।

वज्रिणश्च भुजस्तम्भस्ताभ्यामेव चिकित्सितः ॥ (चरकसंहिता)

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥ (योगवार्तिकम्)

आचार्य चरक

इनका काल लगभग 300-200 ई. पू. माना जाता है। आचार्य चरक आयुर्वेद मर्मज्ञ एवं महर्षि के रूप में प्रसिद्ध है। यह कुषाण राज्य के राजवैद्य थे। इन्होंने आचार्य अग्निवेशकृत अग्निवेश तंत्र को प्रतिसंस्कारित किया जो कि वर्तमान में आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों में से एक चरक संहिता के नाम से प्रसिद्ध है। सम्भवतः इनका वंश नागवंश था एवं इनका काल गुप्त वंश के शासन काल का रहा है। यह यायावर प्रकृति के व्यक्ति थे, अर्थात् यह विचरण करते रहते थे और विचरण करते-करते इन्होने विभिन्न वनस्पति जन्य औषधियों का निर्माण और उनको लिपिबद्ध किया। इनके द्वारा प्रतिसंस्कारित ग्रन्थ (चरक संहिता) में आठ स्थान क्रमशः सूत्रस्थान (30 अध्याय), निदान स्थान (8 अध्याय), विमान स्थान (8 अध्याय), शरीर स्थान (8 अध्याय), इन्द्रिय स्थान (12 अध्याय), चिकित्सा स्थान (30 अध्याय), कल्प स्थान (12 अध्याय), एवं सिद्धि स्थान (12 अध्याय) तथा कुल 120 अध्याय हैं। चरक संहिता में आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्त, दिनचर्या-ऋतुचर्या, रोगों का निदान (कारण), शरीर रचना एवं क्रिया, अरिष्ट लक्षण, रोगों की चिकित्सा के मूल सिद्धान्त एवं औषध कल्पों का समावेश किया गया है। यह संहिता काय चिकित्सा का आधार ग्रन्थ है।

आचार्य सुश्रुत

इनको शल्य तन्त्र का जनक कहा जाता है। आचार्य सुश्रुत ने अपनी संहिता में दिवोदास धन्वन्तरि द्वारा दिये गये उपदेशों को निबद्ध किया, जो कि सुश्रुत संहिता के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि आचार्य सुश्रुत का काल निर्धारण एक विचारणीय विषय है परन्तु विभिन्न आचार्यों एवं इतिहासकारों ने इनका काल 1000-1500 ई. पू. माना है। इनके पिता का नाम विश्वामित्र था। इनके द्वारा रचित सुश्रुत संहिता की प्रथम प्रति संस्कार नागार्जुन द्वारा किया गया एवं अन्तिम पाठ शुद्धि 10वीं शती में चन्द्रट द्वारा की गयी। मूल सुश्रुत संहिता में कुल 120 अध्याय थे, परन्तु बाद में उत्तर तन्त्र के 66 अध्यायों का समावेश कर दिया गया। इस प्रकार वर्तमान में उपलब्ध सुश्रुत संहिता में कुल 186 अध्याय है। सुश्रुत संहिता की विषय वस्तु का अवलोकन करें तो इसमें कुल (उत्तर तन्त्र संहिता) 6 स्थान है, जिनमें अध्यायों का विभाजन इस प्रकार है- सूत्रस्थान में 46 अध्याय, निदान स्थान में 16 अध्याय, शरीर स्थान में 10 अध्याय, चिकित्सा स्थान में 40 अध्याय, कल्प स्थान में 8 अध्याय एवं उत्तर तन्त्र में 66 अध्याय, कुल 186 अध्याय है। सुश्रुत संहिता का स्थान वार अवलोकन किया जाए तो दृष्टिगत होगा कि इसके सूत्र स्थान में आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त, शल्य कर्म में प्रयुक्त होने वाले यन्त्र-शस्त्र, क्षार-अग्नि-जलौका आदि, अरिष्ट विज्ञान एवं द्रव्य गुण विज्ञान का वर्णन किया गया है। निदान स्थान के 16 अध्यायों में प्रमुख व्याधियों के निदान (कारण) का उल्लेख है। शरीर स्थान में शरीर रचना एवं शरीर क्रिया का वर्णन है। इसके चिकित्सा स्थान में मूल रूप से शल्य कर्म की विभिन्न विधियों (शल्यचिकित्सा), रसायन-बाजीकरण एवं पंचकर्म का विस्तृत वर्णन किया गया है। कल्पस्थान में विभिन्न विषयों का उल्लेख है तथा उत्तर तन्त्र में शलाक्य तन्त्र (नेत्र-कर्ण-नासा-एवं शिरो रोग), कौमार भृत्य (बाल रोग एवं स्त्री-प्रसूति रोग), काय चिकित्सा और भूत विद्या का विशद वर्णन किया गया है। आचार्य सुश्रुत द्वारा अपनी संहिता में लगभग 300 प्रकार की शल्य क्रियाओं, संधान विधियों, नेत्र में होने वाले मोतियाबिन्द रोग की शल्य क्रिया, प्रसव विधि, संज्ञाहरण आदि का वर्णन किया गया है।

आचार्य वाग्भट

इनका काल पाँचवी शदी के लगभग है। अष्टांगसंग्रह और अष्टांग हृदय नामक आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थों के यह रचयिता है। इनका जन्म सिन्धु प्रदेश में हुआ था। इनके पितामाह का नाम भी वाग्भट था। सम्भवतः अष्टांग संग्रह की रचना इन्हीं के द्वारा की गयी है। अष्टांगसंग्रह गद्य रूप में जबकि अष्टांगहृदय पद्य रूप में रचित है। अष्टांग संग्रह में आयुर्वेद के आठों अंगों का समावेश किया गया है। रसशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ रसरत्नसमुच्चय के रचयिता भी वाग्भट नाम के आचार्य है। कई विद्वान अष्टांगसंग्रह एवं रसरत्नसमुमच्चय के रचयिता को एक ही व्यक्ति मानते है परन्तु ये दोनों भिन्न व्यक्ति हैं।

माधवकर –

इनका काल सातवीं शती माना गया है। इनके पिता का नाम इन्दूकर था। इन्होने विविध रोगों के निदान (कारण) व्याख्या हेतु 'रोगविनिश्चय' नामक ग्रन्थ की रचना की, इसी ग्रन्थ को 'माधव निदानम्' भी कहते है। तत्कालीन समस्त व्याधियों का निदान इस ग्रन्थ में समाहित है। चिकित्सा जगत में रोगों के निदान हेतु इस ग्रंथ को सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ के रूप में मान्यता मिली। "निदाने माधव: श्रेष्ठ:" कहकर परवर्ती आचार्यो ने लघुत्रयी के अन्तर्गत इस ग्रन्थ को स्थान दिया।

शार्ङ्गधर –

इनके पिता का नाम दामोदर था। इनके द्वारा लघुत्रयी के प्रसिद्ध ग्रन्थ शार्गधर संहिता की रचना की गयी। यह संहिता कुछ तीन खण्डों में विभक्त है- पूर्वखण्ड, मध्यखण्ड और उत्तरखण्ड। इस संहिता में कुल 32 अध्याय और 2600 श्लोक है। इस संहिता में राशि भेद से ऋतुओं का विभाजन किया गया। नाड़ी परीक्षा का सर्वप्रथम वर्णन इसमें आया है। इस संहिता में चिकित्सा विधियों जैसे पंचकर्म, धारास्वेद, शिरोबस्ति, मूर्धतैल का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

भाव मिश्र –

इनका काल सम्वत् 1550 माना गया है। यह लटकन मिश्र के पुत्र थे। इन्होने 'भावप्रकाश' नामक आयुर्वेद के ग्रन्थ की रचना की। जोकि अत्यन्त सरल भाषा में लिखित ग्रन्थ है। इनके अनुसार यह शरीर धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन पुरूषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति का आधार (मूल) है। इन पुरूषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति निरोगी शरीर ही प्राप्त कर सकता है। अतः शरीर को निरोगी रखना प्रत्येक व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। भावप्रकाश ग्रन्थ तीन खण्डों में यथा- पूर्वखण्ड, मध्यखण्ड एवं उत्तर खण्ड में विभाजित है।

चक्रपाणि दत्त –

इनका काल लगभग 1075 ई0 माना गया है। यह बंगाल के रहने वाले थे। यह नारायण दत्त के पुत्र एवं नरदत्त के शिष्य थे। इनके द्वारा चरक संहिता पर 'आयुर्वेद दीपिका' एवं सुश्रुत संहिता पर 'भानुमती' व्याख्या लिखी गयी, जिस कारण से इनको 'चरक चतुरानन' एवं सुश्रुतसहस्त्रनयन' उपाधियों से विभूषित किया गया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'चक्रदत्त' (चिकित्सा संग्रह) और 'द्रव्यगुण संग्रह' नामक ग्रन्थों की भी रचना की।

02.03 आयुर्वेद का प्रयोजन

आयुर्वेद के महार्षियों द्वारा दो ही प्रयोजन बताये गए हैं -

(१) स्वस्थ्य व्यक्ति के स्वास्थ की रक्षा

(२) अस्वस्थ के विकारों का प्रशमन

'प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्य-रक्षणमातुरस्य विकार-प्रशमनं च।' आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के प्रयोजन दो हैं। विहार तथा औषधीय उपचारों का उपदेश, जिनके अवलम्बन से स्वस्थ पुरुष अपने स्वास्थ्य को स्थिर रख सके और आयु की वृद्धि कर सके। दूसरे अहिताहार-विहार के कारण पुरुष रोगी हो गया हो तो जिस उपचार से वह रोगमुक्त हो, उसका उपदेश। आरोग्य को बनाए रखना तथा रोगों से मुक्ति करना - इन दो उद्देश्यों से प्रेरित होकर ही ऋषियों ने आयुर्वेद का उपदेश किया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के

साधनों के लिए निरोग रहना परमावश्यक है। यदि कभी रोग हो जाय, तो उस रोग का दूरीकरण भी एकान्ततः लक्ष्य चिकित्सा-विज्ञान का है -

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मृतमुत्तमम्।

रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।। च.सू. १

उल्वण ने इसकी व्याख्या में रसायनादायुरुत्कर्षस्तु स्वस्थ रक्षयैव गृह्यते लिखा है। इस प्रकार का प्रयोजन किसी एक वर्गवाद के भीतर सीमित चिकित्सा विज्ञान का नहीं, अपितु एक सार्वभौम सिद्धान्त है।

आयुर्वेद का दूसरा प्रयोजन समग्र आयुर्वेद के अष्टांगों में व्याप्त है। रोगों के उपशमन के लिए रुग्णावस्था के लक्षणों (विकृति-लक्षणों) का ज्ञान सर्व-प्रथम आवश्यक है'। इसका कारण यह है कि उन्हें जानकर ही रोग का निदान तथा तद्रूप चिकित्सा का निर्णय हो सकेगा। स्वस्थ-वृत्त के नियमों के अनुष्ठान करने में भी विकृति लक्षणों का ज्ञान उपयोगी है। इससे इन लक्षणों के प्रादुर्भाव के साथ ही जाना जा सकता है कि स्वस्थवृत्त के आचरण में शिथिलता करने से ही यह दशा उत्पन्न हुई है। यह ज्ञान पुरुष को पुनः स्वस्थवृत्त के मार्ग पर लाकर स्वास्थ्य की रक्षा में सहायक होता है। आचार्य सुश्रुत ने भी यही प्रयोजन स्वीकार किया है -

इह खल्वायुर्वेदप्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानौं।

व्याधिपरिमोक्षः, स्वस्थस्य रक्षणंच'।

इकाई 3 – आयुर्वेदोक्त दिनचर्या

3.1 प्रातःकाल का कार्य और विधि

अथातो दिनचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।

आत्रेयादि महान ऋषियों ने जिस प्रकार प्रतिपादन किया है, उसे प्रमाण मानकर हम अब दिनचर्या अध्याय का वर्णन करेंगे।

ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।

शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः॥१॥

स्वस्थ व्यक्ति को स्वास्थ्य रक्षा के लिए ब्राह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। शरीर का निरीक्षण करके मलमूत्रादि का विसर्जन करना चाहिए।

अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिजम्।

प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम्॥२॥

अर्क (रुई), न्यग्रोध (वड), खदिर (खैर), करञ्ज, ककुभ (अर्जुन) इनके मृदु अग्र वाले तथा कषाय, कटु एवं तिक्त रस युक्त काष्ठों का सुबह तथा कुछ भी खाने के बाद (दन्तधावन के लिए) उपयोग करना चाहिए।

कनीन्यग्रसमस्थौल्यं प्रगुणं द्वादशाङ्गुलम्।

भक्षयेद्दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन्॥३॥

इस काष्ठ की मोटाई छोटी उंगली के अग्र भाग के समान तथा लंबाई १२ अंगुल (९ इंच) होनी आवश्यक है। इस काष्ठ का भक्षण मसूडों को चोट ना लगे इसका ध्यान रख कर करना चाहिए।

नाद्यादजीर्णवमथुश्वासकासज्वरार्दिती।

तृष्णास्यपाकहृन्नेत्रशिरः कर्णमयी च तत्॥४॥

अजीर्ण, वमथु (उल्टियां), श्वास, कास (खांसी), ज्वर (बुखार), अर्दित (facial palsy), तृष्णा (अत्याधिक प्यास), अस्यपाक, हृदय, नेत्र, शिर तथा कर्ण रोग से ग्रस्त व्यक्तियों ने दन्तधावन नहीं करना चाहिए।

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत्।

चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषात् श्लेष्मतो भयम्॥५॥

उसके बाद, आंखों के लिए हितकर सौवीराञ्जन(सुरमा) का नित्य उपयोग करना चाहिए। चक्षु यह तेजोमय अंग है अतः कफ से (जल तथा पृथ्वी महाभूत प्रधान) उन्हें सबसे अधिक हानि होती है।

अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं, स जराश्रमवातहा।

दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुःस्वप्नसुत्वत्त्वदार्ढ्यकृत्॥८॥

अभ्यंग का नित्य सेवन करने से वार्धक्य, श्रम तथा वात का हरण होता है वैसे ही, दृष्टि अच्छी होती है, शरीर का पोषण होता है और आयुष्य, निद्रा, कोमल त्वचा तथा सुदृढ शरीर होता है।

शिरः श्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ।

वर्ज्योऽभ्यङ्गः कफग्रस्तकृतसंशुद्ध्यजीर्णिभिः॥९॥

शिर, कान तथा पैरों में अभ्यंग का विशेष (नित्य) सेवन करना चाहिए। कफ रोग के समय शोधन किए हुए तथा अजीर्ण से ग्रस्त व्यक्तियों को अभ्यंग का सेवन नहीं करना चाहिए।

3.2 व्यायाम की विधि और निषेध

शरीरायासजनकं कर्म व्यायामसंज्ञितम् – आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि शरीर में थकावट उत्पन्न करनेवाले कर्म व्यायाम है। ये भी कहा गया है कि –

तुलभ्रमणगुणाकर्षधनुराकर्षणादिभिः

आयामो विविधोऽङ्गानां व्यायाम इति कीर्तितः ॥

मुद्गल (मुद्गर तथा उसी प्रकार के घुमाये जानेवाले भारी आयुधों) को घुमाना, रस्सा खींचना, धनुष का आकर्षण करना इत्यादि (विविध कर्मों) से शरीर के विविध अङ्गों का जो आयाम होता है उसे व्यायाम कहते हैं।

व्यायाम का लाभ -

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।

विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥10॥

व्यायाम करने से शरीर में लघुता (हल्कापन), कार्य करने की शक्ति तथा पाचकाग्नि प्रदीप्त होती है। मेदोधातु का क्षय होता है, शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग की मांसपेशियाँ पृथक-पृथक स्पष्ट हो जाती है तथा शरीर घन (ठोस) हो जाता है।

व्यायाम का निषेध

वातपित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्णी च तं त्यजेत् ।

वातपित्त के रोगी, बालक, वृद्ध तथा अजीर्ण रोगी को व्यायाम नहीं करना चाहिए।

व्यायाम का मात्रा तथा काल-निर्देश

अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः।

शीतकाले वसन्ते च, मन्दमेव ततोऽन्यदा।

बलवान् एवं स्निग्ध भोजन करने वाले को शीत काल एवं वसन्त ऋतु में अर्द्ध शक्ति भर व्यायाम करना चाहिए।

अन्य ऋतुओं (ग्रीष्म, वर्षा एवं शरद) में स्वल्प व्यायाम करना चाहिए।

शरीरायासजनने कर्म व्यायाम उच्यते ।

जिस क्रिया से शरीर में आयास (श्रम- थकावट) उत्पन्न हो, उसे व्यायाम कहते हैं।

व्यायाम के बाद शरीरमर्दन विधान

तं कृत्वाऽनुसुखं देहं समन्ततः ॥12॥

व्यायाम करके समस्त शरीर का सुखपूर्वक मर्दन करना चाहिए।

अति व्यायाम से हानि

तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तं श्रमः क्लमः ।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते ॥

अधिक व्यायाम करने से तृषा (प्यास), क्षयरोग (राजयक्ष्मा), प्रतमक श्वास, रक्तपित्त, श्रम (थकावट), क्लम (मानसिक दुर्बलता या सुस्ती), कास (खाँसी) ज्वर तथा छर्दि (वमन) रोगों की उत्पत्ति होती है।

व्यायाम आदि का निषेध

व्यायामजागराध्वस्त्रीहास्यभाष्यादिसाहसम् ।
गजं सिंह इवाकर्षन् भजन्नति विनश्यति ॥14॥

व्यायाम, जागरण, मार्गगमन, हास्य एवं भाषण – इनका साहस (शक्ति) से अधिक सेवन करने पर मनुष्य उसी प्रकार विनष्ट (रुग्ण अथवा मृत) हो जाता है, जिस प्रकार हाथी (अपने से विशाल जन्तु) को खींचता हुआ सिंह (शेर) नष्ट हो जाता है ।

3.3 स्नानविधि

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमूर्जाबलप्रदम्।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृट्त्वाहपाप्मजित्॥

स्नान करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है, यह वीर्यवर्धक है, आयु को बढाती है, उत्साह एवं बल को बढाती है। खुजली, त्वचा का मल, थकावट, पसीना, उँघाई, प्यास, जलन तथा रोग आदि का नाश करती है।

स्नान में उष्ण-शीत जलप्रयोग-

उष्णाम्बुनाऽधः कायस्य परिषेको बलावहः।
तेनैव तूत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम्॥

गरम जल से गरदन से नीचे के शरीर का स्नान बल को बढाता है। यदि गरम जल से सिर को धोया जाय तो इससे बालों तथा आँखों की शक्ति घटती है।

स्नान का निषेध –

स्नानमर्दितवेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु।
आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम्॥

अर्दित (मुखप्रदेश का लकवा), नेत्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, अतिसार, आध्मान (अपरा), पीनस, अजीर्ण रोगों में तथा भोजन करने के तत्काल बाद स्नान करना हानिकारक होता है।

3.5 सदाचार

हिंसास्तेयान्यथाकामं पैशुन्यं परुषानृते।
सम्भिन्नालापं व्यापादमभिध्यां दृग्विपर्ययम्।
पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत्॥

हिंसा, चोरी, अन्यथाकाम, चुगुलखोरी, कठोर एवं अप्रियवचन, झूठी बात, दोगलापन, द्रोहचिन्तन, दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण, शास्त्रविरुद्ध आचरण – इन दस प्रकार के दोषों को मन, वचन, तथा कर्म से त्याग करना चाहिए।

सहायता का निर्देश -

अवृत्तिव्याधिशओकार्तानुवर्तेत शक्तितः।

जिनकी कोई आजीविका नही है, जो रोग तथा शोक से पीडित है उनका सहायता करना चाहिए।

समदृष्टिता का निर्देश -

आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम् ।

सभी प्राणियों को अपने समान समझना चाहिए।

सम्मान करने का निर्देश-

अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन्।
विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत्।

देवता, गाय, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, नृप तथा अतिथि – इन्हें उचित सम्मान दें। याचकों को अपने शक्ति के अनुसार दान करना चाहिए। उन्हें निराश नहीं लौटाना चाहिए, उनका अपमान न करें एवं न उन्हें झड़कना ही चाहिए।

उपकार का निर्देश –

उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ।

सदा सबका उपकार करना चाहिए, अपकार करने वालों का भी उपकार ही करना चाहिए।

सुख-दुःख में समभाव –

सम्पद्विपत्स्वेकमना हेतावीर्ष्येत्फले न तु।

सुख और दुःख में समान भाव से रहे। सुख और दुःख का कारण पता करें। दुःख का कारण से द्वेष करें, न तु दुःख से।

मधुरभाषण का निर्देश –

काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम्।

समय पर बोले, हितकर बात बोले, थोडा बोले, सत्य वचन बोले, जिस बात का विरोध कोई न करें ऐसा बात बोले, मधुर वचन करें।

पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणामृदुः।
नैकः सुखी न सर्वत्र विश्रब्धो न च शङ्कितः।

पहले बोले, प्रसन्नचित्त रहे, सभ्य व्यवाहर करें, दयालु बने, सरल स्वभाव से रहे, अपने सुख में सबको सम्मिलित करें, सभी के ऊपर विश्वास न करें एवं सभी के ऊपर अविश्वास भी न करें।

न कश्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्।
प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः।

न किसी को अपना शत्रु समझें, न खुद को किसी का शत्रु समझे। अपमान हुआ है तो किसी से न बताएँ। राजा से स्नेहहीनता है तो भी किसी से न बताएँ।

जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति।
तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः।

दूसरे के मन का अभिप्राय समझकर जो व्यक्ति जिस प्रकार सन्तुष्ट होता हो, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।

इन्द्रियव्यवहार –

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यति लालयेत्।

आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों को रूप शब्द आदि अपने अपने विषयों का उपभोग करने से न रोके, परन्तु उन उन विषयों में उन्हे अत्यन्त लोलुप भी न होने दे।

निषिद्ध कार्य –

नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाग्निस्कन्धमभिव्रजेत्।

सन्दिग्धनावं वृक्षं च नारोहेद्दुष्टयानवत्।

वेगवाली नदी को बाहों से तैरकर पार न करें। आग के पास न जाये। खराब वाहन पर न बैठे। टूटे हुए वृक्ष पर न चढें।

सदाचार –

आचार्यः सर्वचेष्टासु लोक एव हि धीमतः।

अनुकुर्यात्तमेवातो लौकिकेऽर्थे परीक्षकः।

सभी प्रकार के सांसारिक व्यवहारों को सीखने के लिए बुद्धिमान् मानव का सम्पूर्ण संसार ही गुरु है। फिर भी सांसारिक अर्थ की परीक्षा करके (हित या अहित का विचार करके) संसार का अनुकरण करें।

3.6 शरीरशुद्धि की विधि

नीचरोमनखश्मश्रुर्निर्मलाङ्घ्रिमलायनः।

स्नानशीलः सुसुरभिः सुवेषोऽनुल्बणोज्वलः।

रोम, नाखून, दाढी-मोछ, इन्हे अधिक न बढायें, इन्हें कटवाते रहें। पैरों को स्वच्छ रखे, मलमार्ग भी स्वच्छ रखे। प्रतिदिन स्नान करें, सुगन्धित पदार्थों का सेवन करें। सुन्दर वस्त्र धारण करें। उद्धत वेश न बनायें। सभ्य पुरुषों के आचरणों का अनुसरण करें।

इकाई 4 -आयुर्वेदोक्त ऋतुचर्या

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड्ऋतवः स्मृताः ।

शिशिरोऽथ वसन्तश् च ग्रीष्मो वर्षा-शरद्-धिमाः ॥ १ ॥

शिशिराद्यास्त्रिभिस्तैस्तु विद्यादयनमुत्तरम् ।

आदानं च तदादत्ते नृणां प्रति-दिनं बलम् ॥ २ ॥

तस्मिन् ह्यत्यर्थतीक्ष्णोष्णरूक्षा मार्गस्वभावतः ।

आदित्यपवनाः सौम्यान् क्षपयन्ति गुणान् भुवः ॥ ३ ॥

तिक्तः कषायः कटुको बलिनोऽत्र रसाः क्रमात् ।

तस्माद् आदानम् आग्नेयम् ऋतवो दक्षिणायनम् ॥ ४ ॥

वर्षादयो विसर्गश्च यद्बलं विसृजत्ययम् ।

सौम्यत्वादत्र सोमो हि बलवान् हीयते रविः ॥ ५ ॥

मेघवृष्ट्यनिलैः शीतैः शान्ततापे महीतले ।

स्निग्धाश्चेहाम्ललवणमधुरा बलिनो रसाः ॥ ६ ॥

शीतेऽग्र्यं वृष्टिघर्मेऽल्पं बलं मध्यं तु शेषयोः ।

04.01 हेमन्त ऋतुचर्या

बलिनः शीतसंरोधाद्धेमन्ते प्रबलोऽनलः ॥ ७ ॥

भवत्यल्पेन्धनो धातून् स पचेद्वायुनेरितः ।

अतो हिमेऽस्मिन् सेवेत स्वाद्वम्ललवणान् रसान् ॥ ८ ॥

हेमन्त ऋतु में कालस्वभाव के कारण पुरुष अधिक बलवान् रहता है। क्योंकि शीत के कारण भीतर रुका होने के कारण (अर्थात् रोमकूपों के शीत से अवरुद्ध होने के कारण) जठराग्नि (पाचकाग्नि) अधिक बलवान् हो जाती है। यदि उसे आहार रूपी ईंधन (जिसे वह जठराग्नि पका या जला सके।) कम मिल पाता है, तो वह अग्नि वायु द्वारा प्रेरित होकर (सुलगकर)

रस आदि शरीरस्थ धातुओं को पचाने लगती है। इसलिए हेमन्त ऋतु में वातनाशक मधुर, अम्ल तथा लवण रसयुक्त पदार्थों का पर्याप्त सेवन करना चाहिए।

दैर्घ्यान् निशानामेतर्हि प्रातरेव बुभुक्षितः ।
अवश्यकार्यं संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु ॥ ९ ॥

वातघ्नतैलैरभ्यङ्गं मूर्ध्नि तैलं विमर्दनम् ।
नियुद्धं कुशलैः सार्धं पादाघातं च युक्तितः ॥ १० ॥

प्रातःकाल के कर्तव्य-हेमन्त ऋतु में रातें लम्बी होने लगती हैं, अतः प्रातःकाल उठते ही भूख लग जाती है। इसलिए प्रातःकाल समय पर उठकर मल-मूत्र करने के बाद शौच आदि क्रिया से निवृत्त होकर दतवन आदि करके उसके बाद यथोक्त (आठवें पद्य में ऊपर जो कहा है-'सेवेत स्वाद्वम्ललवणान् रसान्') का सेवन करें अर्थात् मधुर, लवण तथा अम्ल रसयुक्त पदार्थों (मिठाई, नमकीन आदि) को खाये अथवा जलपान करें। इस ऋतु में प्रतिदिन वातनाशक तैलों का मालिश करें या कराये। ल्लविद्याकुशल पहलवानों के साथ कुश्ती करें, यदि सम्भव हो तो पादाघात (लंगड़ी लगाना) आदि को विधिपूर्वक सीखे, अन्यथा कुछ व्यायाम अवश्य करें॥

कषायापहृतस्नेहस्ततः स्नातो यथाविधि ।
कुङ्कुमेन सदर्पेण प्रदिग्धोऽगुरुधूपितः ॥ ११ ॥

रसान् स्निग्धान् पलं पुष्टं गौडमच्छसुरां सुराम् ।
गोधूमपिष्टमाषेक्षुक्षीरोत्थविकृतीः शुभाः ॥ १२ ॥

नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्ये सुखोदकम् ।
प्रावाराजिनकौशेयप्रवेणीकौचवास्तृतम् ॥ १३ ॥

उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतः शयनं भजेत् ।
युक्त्यार्ककिरणान् स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा ॥ १४ ॥

स्नान आदि विधि-उसके बाद आँवला आदि कसैले द्रव्यों के कल्क (चटनी के समान पिसे हुए द्रव्यों) से पहले किये गये अभ्यंग (मालिश) की चिकनाहट को दूर करें, फिर विधिपूर्वक स्नान करें। उसके बाद शरीर को मोटे तौलिया से पोंछकर कुंकुम, कस्तूरी आदि उष्णगुण-प्रधान द्रव्यों का लेप (तिलक) लगाये और अगुरु की धूप की सुवास का सेवन कर तदनन्तर भोजन करें। भोजन में घी-तेल में भुना गया मांसरस स्वस्थ प्राणियों के मांस का होना चाहिए। गुड से बने पदार्थ, स्वच्छ (उत्तम) मद्य या सामान्य मद्य, गेहूँ का आटा, उड़द की दाल, इक्षुरस, दूध द्वारा निर्मित पदार्थ (दही, मठा, मलाई, रबड़ी, खुरचन आदि), नये चावलों का भात, वसा, तैल का सेवन करें। हाथ धोने आदि के लिए गुनगुना गरम जल का प्रयोग करें। इन दिनों प्रावार (ऊनी कम्बल आदि), मृगचर्म, रेशमी बिछौना, टाट या कुथक (रंग-बिरंगा कम्बल या गलीचा या गद्दा) बिछाकर रखें। ऊनी हलके चादर को ओढ़कर सोयें। प्रातःकाल युक्तिपूर्वक सूर्य की किरणों का सेवन करें। स्वेदन कर्म करें तथा जूता-जुराब (मोजे) को सदैव धारण करें॥

04.02 शिशिर ऋतुचर्या

अयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि विशेषतः ।
तदा हि शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम् ॥ १७ ॥

शिशिर ऋतुचर्या-हेमन्त ऋतु में कही गयी सभी विधियों का सेवन विशेष करके शिशिर ऋतु में भी करना चाहिए। विशेषता यह है कि इस ऋतु में हेमन्त ऋतु की अपेक्षा शीत अधिक पड़ने लगता है, क्योंकि इस ऋतु में आदानकाल का प्रारम्भ हो जाता है। अतः इसमें रूक्षता आने लगती है॥

04.03 वसन्त ऋतुचर्या

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः ।
हत्वाग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत् ॥ १८ ॥

तीक्ष्णैर्वमननस्याद्यैर्लघुरूक्षैश्च भोजनैः ।

व्यायामोद्वर्तनाघातैर्जित्वा श्लेष्माणमुल्बणम् ॥ १९ ॥

स्नातोऽनुलिप्तः कर्पूरचन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।

पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुक् ॥ २० ॥

सहकाररसोन्मिश्रानास्वाद्य प्रियया र्पितान् ।

प्रियास्यसङ्गसुरभीन् प्रियानेत्रोत्पलाङ्कितान् ॥ २१ ॥

सौमनस्यकृतो हृद्यान् वयस्यैः सहितः पिबेत् ।

निर्गदानासवारिष्टसीधुमार्द्वीकमाधवान् ॥ २२ ॥

शृङ्गवेराम्बु साराम्बु मध्वम्बु जलदाम्बु च ।

शिशिर ऋतु में शीत की अधिकता के कारण स्वाभाविक रूप से कफदोष का संचय हो जाता है। वह कफदोष वसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों से सन्तप्त होकर पिघलने लगता है, जिसके कारण पाचकाग्नि मन्द पड़ कर अनेक प्रकार के (प्रतिश्याय आदि) रोगों को उत्पन्न कर देता है, अतः इस ऋतु में उस कफदोष को शीघ्र निकालने का प्रयत्न करें। (वमन तथा रूक्ष नस्यों के प्रयोग से इसका निर्हरण करें।) अन्यत्र कहा भी है-'हेमन्ते चीयते श्लेष्मा वसन्ते च प्रकुप्यति'। यहाँ हेमन्त शब्द के साहचर्य से शिशिर ऋतु का भी ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि दोनों की ऋतुचर्या प्रायः समान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि हेमन्त-शिशिर ऋतु में संचित कफदोष का प्रकोप वसन्त ऋतु में होता है।) इसलिए कफदोष को निकालने के लिए तीक्ष्ण वमनकारक द्रव्यों द्वारा वमन करायें और तीक्ष्ण एवं रूक्ष औषधों का प्रतिदिन नस्य लें। लघु (शीघ्र पचने वाले) तथा रूक्ष (स्नेहरहित) भोजन करें। व्यायाम, उबटन, आघात (दण्ड-बैठक) का प्रयोग करें और कराये, जिससे बढ़ा हुआ कफदोष शान्त हो जाय अन्यत्र इस ऋतुचर्या में धूमपान, कवलग्रह का भी विधान है)। उसके बाद स्नान करें; फिर कपूर, अगरु, चन्दन, कुंकुम का शरीर में अनुलेप लगाये (तिलक करें)। भोजन में पुराने जौ, गेहूँ की रोटी आदि बनाकर खाये, मधु का सेवन करें, जांगल देश के प्राणियों

के मांस के बड़े बनवाकर खायें, जो लोहे की शलाका में पिरोकर पकाये जाते हैं, अतएव इन्हें 'शूल्य' कहा जाता है।

मध्याह्नचर्या –

दक्षिणानिलशीतेषु परितो जलवाहिषु ॥ २३ ॥

अदृष्टनष्टसूर्येषु मणिकुट्टिमकान्तिषु ।

परपुष्टविघुष्टेषु कामकर्मान्तभूमिषु ॥ २४ ॥

विचित्रपुष्पवृक्षेषु काननेषु सुगन्धिषु ।

गोष्ठीकथाभिश्चित्राभिर्मध्याह्नं गमयेत् सुखी ॥ २५ ॥

जो घने वन दक्षिण दिशा की वायु अर्थात् मलयज पवन से शीतल तथा सुगन्धित हों, जहाँ चारों ओर जलप्रवाह हो रहा हो, जहाँ सूर्य का प्रकाश थोड़ा पड़ रहा हो या वन के घने होने से न हो रहा हो, जहाँ हीरे-मरकत आदि के फर्श बने हों; इनकी कान्ति से युक्त वनों में, जहाँ कोयलें कूक रही हों, सहवास करने योग्य स्थानों में, जहाँ विविध प्रकार के सुगन्धित फूलों वाले वृक्ष हों, ऐसे वनों (उद्यानों) में सुख चाहने वाला पुरुष मित्रमण्डली की कथा-सुभाषित युक्त सभाओं द्वारा मध्याह्नकाल को बिताये॥। २३-२५॥

वसन्त ऋतु मे अपथ्य -

गुरु-शीत-दिवा-स्वप्न-स्निग्धाम्ल-मधुरांस् त्यजेत् ।

वसन्त ऋतु में अपथ्य-इस ऋतु में गुरु (देर से पचने वाले भक्ष्य पदार्थ), शीतल पदार्थ, दिन में सोना, स्निग्ध (घी-तेल से बने हुए खाद्य) पदार्थों, अम्ल तथा मधुर रस-प्रधान पदार्थों का सेवन न करें, क्योंकि ये सभी कफवर्धक होते हैं।

04.04 ग्रीष्म ऋतुचर्या

तीक्ष्णांशुरतितीक्ष्णांशुर्ग्रीष्मे संक्षिपतीव यत् ॥ २६ ॥

प्रत्यहं क्षीयते श्लेष्मा तेन वायुश्च वर्धते ।

अतोऽस्मिन् पटुकद्वम्लव्यायामार्ककरांस्त्यजेत् ॥ २७ ॥

ग्रीष्म ऋतुचर्या-ग्रीष्म ऋतु में तीक्ष्णांशु (सूर्य) अपनी तेज किरणों से संसार के जलीय तत्त्व को सुखा देता है। (यहाँ एक दूसरा पाठभेद इस प्रकार मिलता है-'स्नेहमर्कोऽतितीक्ष्णांशु:'। यह पाठ अधिक स्पष्ट है, इससे भी चरकोक्त यह पाठ अधिक स्पष्ट है-'मयूखैर्जगतः स्नेहं ग्रीष्मे पेपीयते रवि:'। (च.सू. ६।२७) जिसके कारण शरीरस्थित जलीय अंश कफधातु का भी क्षय होने लगता है, फलतः वातदोष की वृद्धि होती जाती है। इसलिए इस ऋतु में लवण, कटु तथा अम्ल रस-प्रधान पदार्थों का, व्यायाम एवं धूप (घाम) का सेवन करना छोड दें॥। २६-२७।

सेवनीय पदार्थ -

भजेन्मधुरमेवान्नं लघु स्निग्धं हिमं द्रवम् ।

सेवनीय पदार्थ-इस ऋतु में अधिक मधुर आहारों का सेवन करें तथा लघु (शीघ्र पच जाने वाले), स्निग्ध (घी-तेल से बने हुए) पदार्थों, शीतल एवं पेयों का सेवन करें।

सत्तू सेवनविधि –

सुशीततोयसिक्ताङ्गो लिह्यात्सक्तून् सशर्करान् ॥ २८ ॥

सत्तू-सेवनविधि-अत्यन्त शीतल जल (यह स्वभावशीतल जल पर्वतीय प्रदेशों में सुलभ होता है, कृत्रिम शीतल जल सर्वत्र मिल सकता है, किन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से वह निकृष्ट होता है। देखें- हिमवत्प्रभवा: पथ्याः पुण्या देवर्षिसेविता:'। च.सू. २७।२०९) से स्नान करें, चीनी मिलाकर सत्तुओं को चाटे। (चाटने योग्य बनाने के लिए उसमें शीतल जल मिला लें। ॥२८॥

भोजन विधान -

कुन्देन्दुधवलं शालिमश्नीयाज्जाङ्गलैः पलैः ।

भोजन-विधान-कुन्द (चमेली का एक भेद 'मोतिया') के समान सफेद तथा इन्दु (चन्द्रमा) के समान शीतल (शीतवीर्य) शालिचावलों के भात को तीतर, बटेर आदि जांगलदेशीय प्राणियों के मांसरस के साथ खाये।

पेय विधान –

पिबेद्रसं नातिघनं रसालां रागखाण्डवौ ॥ ३० ॥

पानकं पञ्चसारं वा नवमृद्भाजने स्थितम् ।

मोचचोचदलैर्युक्तं साह्लं मृन्मयशुक्तिभिः ॥ ३१ ॥

पाटलावासितं चाम्भः सकर्पूरं सुशीतलम् ।

पेय-विधान-अधिक गाढ़े मांसरस का सेवन न करें। रसाला, राग (रायता), खाण्डव (खट्टे, मधुर, नमकीन रसों के घोल) का पान करें। पञ्चसार का सेवन करें, जो नये मिट्टी के पात्र में बनाया गया हो; इस पात्र की सोंधी गन्ध भी उसमें आ जाती है, उसे शीतल करने के लिए कुछ देर केले अथवा महुए के पत्तों से ढककर रखे हुए पन्ना या शर्बत को पीयें, जिसमें कुछ खटाई भी मिलायी गयी हो। इसे पीने के लिए मिट्टी का पुरवा या कुल्हड या कसोरा होना चाहिए। पीने से पहले इसे पाढल के फूलों तथा कपूर से सुगन्धित कर लेना चाहिए॥

रात्रि में दुग्धपान विधि –

शशाङ्ककिरणान् भक्ष्यान् रजन्यां भक्षयन् पिबेत् ॥ ३२ ॥

ससितं माहिषं क्षीरं चन्द्रनक्षत्रशीतलम् ।

रात्रि में दुग्धपान-विधि-शशांककिरण नामक भोजनों का सेवन करते हुए चन्द्रमा तथा तारों द्वारा शीतल किया गया और मिश्री मिले हुए भैंस के दूध को पीये॥ ३२। वक्तव्य-शशांककिरण नामक भोजन का परिचय-'तालीसचूर्णबटका: सकर्पूरसितोपलाः। शशाङ्ककिरणाख्याश्च भक्ष्या रुचिकरा: परम्' (अ.हृ.चि. ५।४९)।

04.05 वर्षा ऋतुचर्या

आदानग्लानवपुषामग्निः सन्नोऽपि सीदति ।
वर्षासु दोषैर्दुष्यन्ति तेऽम्बुलम्बाम्बुदेऽम्बरे ॥ ४२ ॥

सतुषारेण मरुता सहसा शीतलेन च ।
भूबाष्पेणाम्लपाकेन मलिनेन च वारिणा ॥ ४३ ॥

वह्निनैव च मन्देन तेष्वित्यन्योऽन्यदूषिषु ।
भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेजनं च यत् ॥ ४४ ॥

वर्षाऋतुचर्या-आदानकाल (शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म) के प्रभाव से दुर्बल शरीर वाले प्राणियों की पहले से ही मन्द हुई अग्नि (जठराग्नि) इस (प्रावृट् एवं वर्षा) ऋतु में वात आदि दोषों से और भी अधिक मन्द पड़ जाती है, क्योंकि उक्त वे दोष जल के भार से लटकते हुए बादलों द्वारा आकाश में छाये रहने पर तुषार युक्त अतएव शीतल वायु के स्पर्श से, पृथिवी में से निकलने वाली भाप के प्रभाव से, आहार के अम्लविपाक वाले होने से, इस काल में होने वाले मैले जल के प्रयोग से तथा जठराग्नि के मन्द पड़ जाने से (वे दोष) कुपित होकर आपस में एक-दूसरे को दूषित करने लगते हैं। ऐसी स्थिति हो जाने पर साधारण आहार-विहार, जो वात आदि दोषों का शमन करने वाला हो, साथ ही जठराग्निवर्धक हो, उसका सेवन करें॥

शरीर शुद्धि -

आस्थापनं शुद्धतनुर्जीर्णे धान्यं रसान् कृतान् ।
जाङ्गलं पिशितं यूषान् मध्वरिष्टं चिरन्तनम् ॥ ४५ ॥

मस्तु सौवर्चलाढ्यं वा पञ्चकोलावचूर्णितम् ।
दिव्यं कौपं श्रृतं चाम्भो भोजनं त्वतिदुर्दिने ॥ ४६ ॥

व्यक्ताम्ललवणस्नेहं संशुष्कं क्षौद्रवल्लघु ।

शरीरशुद्धि

इस ऋतु के आरम्भ में वमन-विरेचन क्रियाओं द्वारा शरीरगत संचित दोषों का शोधन करके आस्थापन (निरूहण) बस्ति का सेवन करें। साधारण आहार-पहले खाये हुए भोजन के लीभाँति पच जाने पर आगे निम्नोक्त पदार्थों का इन दिनों सेवन करें-पुराने जौ एवं गेहूँ आदि सुपच पदार्थों को खायें, अच्छी प्रकार पकाये गये तथा छौंके हुए मांसरस, हरिण आदि जांगलदेशीय प्राणियों का मांस, मूँग आदि दालों का जूस, पुराना मधु, पुराने आसव, अरिष्ट, मस्तु, सौवर्चल (कालानमक) युक्त अथवा पञ्चकोल (पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चीता, नागरमोथा) के चूर्ण को मिलाकर उक्त मांसों, मांसरसों, जूसों तथा आसवों का सेवन करें।

जल –

इन दिनों वर्षा का स्वच्छ जल (जो आकाश से बरसते समय स्वच्छ पात्र में संग्रह किया हो), कुआँ का जल अथवा पकाकर शीतल किये हुए जल का सेवन करें।

दुर्दिन में-

जिस दिन आकाश में अत्यन्त बादल छायें हों, उस दिन पर्याप्त मात्रा में खट्टे रस वाले पदार्थों, नमकीन पदार्थों तथा स्निग्ध पदार्थों के साथ सूखा चबैना का सेवन करें। ये पदार्थ लघु होते हैं, अतः शीघ्र पच जाते हैं॥। ४५-४६।।

सेवनीय विचार –

अपादचारी सुरभिः सततं धूपिताम्बरः ॥ ४७ ॥

हर्म्यपृष्ठे वसेद् बाष्पशीतसीकरवर्जिते ।

सेवनीय विहार-इन दिनों नंगे पैरों से गीली भूमि में तथा कीचड़ में नहीं चलना चाहिए। इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग करता रहे, वस्त्रों में अगरु आदि की धूप देता रहे। छत के

ऊपर चारों ओर से खुले कमरे में निवास करें, जहाँ पृथिवी से निकलने वाली भाप न हो, सर्दी न हो तथा वर्षा की बौछारें न पहुँचती हों॥। ४७॥

त्याज्य विहार –

नदीजलोदमन्थाहःस्वप्नायासातपांस्त्यजेत् ॥ ४८ ॥

इन दिनों नदी या नद के जलों तथा पतला मठा या छाँछ को न पीयें। सत्तू का सेवन न करें, दिन में न सोयें, अधिक परिश्रम न करें और धूप (घाम) का सेवन न करें॥४८॥

04.06 शरद् ऋतुचर्या

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः ।

तप्तानां संचितं वृष्टौ पित्तं शरदि कुप्यति ॥ ४९ ॥

तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोक्षणम् ।

वर्षा ऋतु में पानी से भीगे हुए अतएव शीततायुक्त प्राणियों के शरीरों में पित्त का संचय क्रमशः होता रहता है। उसके बाद शरद् ऋतु के आ जाने पर एकाएक सूर्य की तेज किरणों द्वारा तपे हुए प्राणियों के शरीरों में वर्षाकाल में संचित हुआ पित्त इस समय कुपित हो जाता है। उस पर विजय पाने के लिए अर्थात् वह किसी प्रकार के पित्तजनित विकारों को पैदा न कर दें, इसके लिए तिक्तघृत का सेवन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण कराना चाहिए॥४९॥

आहार विधि –

तिक्तं स्वादु कषायं च क्षुधितोऽन्नं भजेल् लघु ॥ ५० ॥

शालिमुद्गसिताधात्रीपटोलमधुजाङ्गलम् ।

तिक्त, मधुर तथा कसैले रस-प्रधान पदार्थों को आहारकाल में भूख लगने पर थोड़ी मात्रा में खायें। शालि के चावल, मूँग, मिश्री या खाँड, आँवला, परवल, मधु तथा जांगल प्राणियों के मांस या मांसरस का सेवन करें॥ ५०॥

हंसोदकसेवन निर्देश –

तप्तं तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः ॥ ५१ ॥

समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ।

शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम् ॥ ५२ ॥

नाभिष्यन्दि न वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम् ।

हंसोदकसेवन-निर्देश-दिन में स्वाभाविक रूप से सूर्य की किरणों से तपा हुआ और रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से शीतल अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र की किरणों से सुसेवित तथा अगस्त्य तारा के उदय हो जाने से निर्विष (दोषरहित) अतएव पवित्र, निर्मल एवं दोषनाशक जल को 'हंसोदक' कहते हैं। यह जल अभिष्यन्दकारक नहीं होता और न रूक्ष ही होता है। वह अमृत के समान गुणों वाला जल पीने योग्य होता है। ५१-५२।।

विहार विधि –

चन्दनोशीरकर्पूरमुक्तास्रग्वसनोज्ज्वलः ॥ ५३ ॥

सौधेषु सौधधवलां चन्द्रिकां रजनीमुखे ।

विहार-विधि-रजनीमुख (रात्रि होने के बाद एक-दो घण्टा तक आरम्भ) में चन्दन, खस तथा कपूर का लेप लगाकर (इन द्रव्यों का अलग-अलग या एक साथ भी लेप बनाया जा सकता है), मोतियों की माला धारण कर, साफ-सुथरे वस्त्र पहन कर, चूना से पुते हुए भवन की ऊपरी छत पर बैठकर चूना के सदृश उज्ज्वल चाँदनी का सेवन करें॥५३॥

अपथ्य निषेध –

तुषारक्षारसौहित्यदधितैलवसातपान् ॥ ५४ ॥

तीक्ष्णमद्यदिवास्वप्नपुरोवातान् परित्यजेत् ।

अपथ्य-निषेध-इस ऋतु में निम्नलिखित दस वस्तुओं का सेवन न करें, ये अपथ्य होते हैं-१. ओस, २. क्षार पदार्थ, ३. भरपेट भोजन करना, ४. दही, ५. तेल, ६. वसा (प्राणिज स्नेह के द्वारा पकाये गये दार्थ), ७. तेजधूप (घाम), ८. तीक्ष्ण मद्य, ९. दिन में सोना तथा १०. पूरब की ओर से बहने वाली वायु॥५४॥

संक्षिप्त ऋतुचर्या –

शीते वर्षासु चाद्यांस्त्रीन् वसन्तेऽन्त्यान् रसान् भजेत् ॥ ५५ ॥

स्वादुं निदाघे शरदि स्वादुतिक्तकषायकान् ।
शरद्वसन्तयो रूक्षं शीतं घर्मघनान्तयोः ॥ ५६ ॥

अन्नपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यदा ।

संक्षिप्त ऋतुचर्या-विस्तार से कही गई ऋतुचर्या का अब यहाँ संक्षेप से वर्णन किया जा रहा है। शीतकाल (हेमन्त तथा शिशिर ऋतु) में और वर्षा ऋतु में आरम्भ के तीन (मधुर, अम्ल, लवण) रसों का सेवन करें। वसन्त ऋतु में अन्तिम तीन (तिक्त, कटु, कषाय) रसों का सेवन करें। ग्रीष्म ऋतु में विशेष करके मधुररस का सेवन करें। शरद् ऋतु में मधुर, तिक्त, कषाय रसों का सेवन करें। शरद् तथा वसन्त ऋतुओं में रूक्ष अन्न (आहार) तथा पेय लें। ग्रीष्म एवं घनान्त (शरद्) ऋतुओं में शीतगुण- धान अन्न-पान का सेवन करें और हेमन्त, शिशिर, वर्षा ऋतुओं में उक्त (रूक्ष, शीत) के विपरीत स्निग्ध एवं उष्ण अन्नपान का सेवन करना चाहिए॥ ५५-५६।

रससेवन निर्देश –

नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ ॥ ५७ ॥

रससेवन-निर्देश-सभी ऋतुओं में प्रतिदिन सभी (छहों) रसों का सेवन करना चाहिए तथा जिस-जिस ऋतु में जिन-जिन रसों के सेवन का विशेष निर्देश दिया गया है, उस-उस ऋतु में उस-उस रस का अधिक सेवन करना चाहिए॥ ५७॥

ऋतुसन्धि में कर्तव्य -

ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसंधिरिति स्मृतः ।

तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात् ॥ ५८ ॥

असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात् ॥ ५८

ऋतुसन्धि में कर्तव्य - दो ऋतु के जोड़ को ऋतुसन्धि कहते हैं। प्रथम ऋतु का अन्तिम सप्ताह और आने वाली ऋतु का प्रथम सप्ताह अर्थात् यह पन्द्रह दिन का समय ऋतुसन्धि है। इसमें क्रमशः पहले ऋतु की चर्या को छोड़ते हुए अगले ऋतु की चर्या का अभ्यास करना प्रारम्भ कर देना चाहिए। यदि आप पहली ऋतुचर्या को सहसा छोडकर दूसरी ऋतुचर्या को सहसा प्रारम्भ कर देंगे तो इस व्यतिक्रम से सात्म्यजनित रोग हो सकते हैं॥ ५८॥

इकाई 5 – अमरकोष वनौषधि वर्ग

अथ वनौषधिवर्गः।

अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम् ।

महारण्यमरण्यानी गृहारामास्तु निष्कुटाः ।

आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत् ।

अमात्यगणिकागेहोपवने वृक्षवाटिका ।

पुमानाक्रीड उद्यानं राज्ञः साधारणं वनम् ।

स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितम् ।

वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिः श्रेणी लेखास्तु राजयः ।

वन्या वनसमूहे स्यादङ्कुरोऽभिनवोद्भिदि ।

वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः ।

अनोकहः कुटः शालः पलाशी द्रुद्रुमागमाः ।

वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्तैरपुष्पाद्वनस्पतिः ।

ओषध्यः फलपाकान्ताः स्युरवन्ध्यह् फलेग्रहिः ।

वन्ध्योऽफलोऽवकेशी च फलवान्फलिनः फली ।

प्रफुल्लोत्फुल्लसंफुल्लव्याकोशविकचस्फुटाः ।

फुल्लश्चैते विकसिते स्युरवन्ध्यादयस्त्रिषु ।

स्थाणुर्वा ना ध्रुवः शङ्कुर्ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः ।

अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ वल्ली तु व्रततिर्लता ।

लता प्रतानिनी वीरुद्गुल्मिन्युलप इत्यपि ।

नगाद्यारोह उच्छ्राय उत्सेधश्चोच्छ्रयश्च सः ।

अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधिस्तरोः ।

समे शाखालते स्कन्धशाखाशाले शिफाजटे ।

शाखाशिफावरोहः स्यान्मूलाच्चाग्रं गता लता ।

शिरोग्रं शिखरं वा ना मूलं बुध्नोऽङ्घ्रिनामकः ।

सारो मज्जा नरि त्वक्स्त्री वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्।

काष्ठं दार्विन्धनं त्वेध इध्ममेधः समित्स्त्रियाम् ।

निष्कुहः कोटरं वा ना वल्लरिर्मञ्जरिः स्त्रियौ ।

पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्ण छदः पुमान् ।

पल्लवोऽस्त्री किसलयं विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम् ।

वृक्षादीनां फलं सस्यं वृन्तं प्रसवबन्धनम् ।

आमे फले शलाटुः स्याच्छुष्के वानमुभे त्रिषु ।

क्षारको जालकं क्लीबे कलिका कोरकः पुमान् ।

स्याद्गुच्छकस्तु स्तबकः कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियाम्।

स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम् ।

मकरन्दः पुष्परसः परागः सुमनोरजः ।

द्विहीनं प्रसवे सर्वं हरीतक्यादयः स्त्रियाम् ।

आश्वत्थवैणवप्लाक्षनैयग्रोधैङ्गुदम् फले ।

बार्हतं च फले जम्ब्वा जम्बूः स्त्री जम्बु जाम्बवम्।

पुष्पे जातीप्रभृतयः स्वलिङ्गाः व्रीहयः फले ।

विदार्याद्यास्तु मूलेऽपि पुष्पे क्लीबेऽपि पाटला ।

बोधिद्रुमश्चलदलः पिप्पलः कुञ्जराशनः ।

अश्वत्थेऽथ कपित्थे स्युर्दधित्थग्राहिमन्मथाः ।

तस्मिन्दधिफलः पुष्पफलदन्तशठावपि ।

उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः ।

कोविदारे चमरिकः कुद्दालो युगपत्रकः ।

सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः ।

आरग्वधे राजवृक्षशम्पाकचतुरङ्गुलाः ।

आरेवतव्याधिघातकृतमालसुवर्णकाः ।

स्युर्जम्बीरे दन्तशठजम्भजम्भीरजम्भलाः ।

वरुणो वरणः सेतुस्तिक्तशाकः कुमारकः ।

पुंनागे पुरुषस्तुङ्गः केसरो देववल्लभः ।

पारिभद्रे निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातकः ।

तिनिशे स्यन्दनो नेमी रथद्रुरतिमुक्तकः ।

वञ्जुलश्चित्रकृच्चाथ द्वौ पीतनकपीतनौ ।

आम्रातके मधूके तु गुडपुष्पमधुद्रुमौ ।

वानप्रस्थमधुष्ठीलौ जलजेऽत्र मधूलकः ।

पीलौ गुडफलः स्रंसी तस्मिंस्तु गिरिसम्भवे ।

अक्षोटकन्दरालौ द्वावङ्कोटे तु निकोचकः ।

पलाशे किंशुकः पर्णो वातपोतोऽथ वेतसे ।

रथाभ्रपुष्पविदुरशीतवानीरवञ्जुलाः ।

द्वौ परिव्याधविदुलौ नादेयी चाम्बुवेतसे ।

शोभाञ्जने शिग्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचकाः ।

रक्तोऽसौ मधुशिग्रुः स्यादरिष्टः फेनिलः समौ ।

बिल्वे शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि ।

प्लक्षो जटी पर्कटी स्यान्न्यग्रोधो बहुपाद्वटः ।

गालवः शाबरो लोध्रस्तिरीटस्तिल्वमार्जनौ ।

आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः ।

कुम्भोलूखलकं क्लीबे कौशिको गुग्गुलुः पुरः ।

शेलुः श्लेष्मातकः शीत उद्दालो बहुवारकः ।

राजादनं प्रियालः स्यात्सन्नकद्रुर्धनुःपटः ।

गम्भारी सर्वतोभद्रा काश्मरी मधुपर्णिका ।

श्रीपर्णी भद्रपर्णी च काश्मर्यश्चाप्यथ द्वयोः ।

कर्कन्धूर्बदरी कोलिः कोलं कुवलफेनिले ।

सौवीरं बदरं घोण्टाप्यथ स्यात्स्वादुकण्टकः ।

विकङ्कतः सुवावृक्षो ग्रन्थिलो व्याघ्रपादपि ।

ऐरावतो नागरङ्गो नादेयी भूमिजम्बुका ।

तिन्दुकः स्फूर्जकः कालस्कन्धश्च शितिसारके ।

काकेन्दुः कुलकः काकतिन्दुकः काकपीलुके ।

गोलीढो झाटलो घण्टापाटलिर्मोक्षमुष्ककौ ।

तिलकः क्षुरकः श्रीमान्समौ पिचुलझावुकौ ।

श्रीपर्णिका कुमुदिका कुम्भी कैटर्यकङ्कलौ ।

क्रमुकः पट्टिकाख्यः स्यात्पट्टी लाक्षाप्रसादनः ।

तूदस्तु यूपः क्रमुको ब्रह्मण्यो ब्रह्मदारु च ।

तूलं च नीपप्रियककदम्बास्तु हरिप्रियः ।

वीरवृक्षोऽरुष्करोऽग्निमुखी भल्लातकी त्रिषु ।

गर्दभाण्डे कन्दरालकपीतनसुपार्श्वकाः ।

प्लक्षश्च तिन्तिडी चिञ्चाम्लिकाथो पीतसारके ।

सर्जकासनबन्धूकपुष्पप्रियकजीवकाः ।

साले तु सर्जकाश्वर्याश्वकर्णकाः सस्यसम्बरः ।

नदीसर्जो वीरतरुरिन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः ।

राजादनः फलाध्यक्षः क्षीरिकायामथ द्वयोः ।

इङ्गुदी तापसतरुर्भूर्जे चर्मिमृदुत्वचौ ।

पिच्छिला पूरणी मोचा स्थिरायुः शाल्मलिर्द्वयोः।

पिच्छा तु शाल्मलीवेष्टे रोचनः कूटशाल्मलिः ।

चिरबिल्वो नक्तमालः करजश्च करञ्जके ।

प्रकीर्यः पूतिकरजः पूतिकः कलिमारकः ।

करञ्जभेदाः षड्ग्रन्थो मर्कट्यङ्गारवल्लरी ।

रोही रोहितकः प्लीहशत्रुर्दाडिमपुष्पकः ।

गायत्री बालतनयः खदिरो दन्तधावनः ।

अरिमेदो विड्वदिरे कदरः खदिरे सिते ।

सोमवल्कोऽप्यथ व्याघ्रपुच्छगन्धर्वहस्तकौ ।

एरण्ड उरुबूकश्च रुचकश्चित्रकश्च सः ।

चञ्चुः पञ्चाङ्गुलो मण्डवर्धमानव्यडम्बकाः ।

अल्पा शमी शमीरः स्याच्छमी सक्तुफला शिवा।

पिण्डीतको मरुबकः श्वसनः करहाटकः ।

शल्यश्च मदने शक्रपादपः पारिभद्रकः ।

भद्रदारु द्रुकिलिमं पीतदारु च दारु च ।

पूतिकाष्ठं च सप्त स्युर्देवदारुण्यथ द्वयोः ।

पाटलिः पाटलामोघा काचस्थाली फलेरुहा ।

कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी श्यामा तु महिलाह्वया ।

लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली ।

विष्वक्सेना गन्धफली कारम्भा प्रियकश्च सा ।

मण्डूकपर्णपत्रोर्णनटकट्वङ्गटुण्टुकाः ।

स्योनाकशुकनासर्क्षदीर्घवृन्तकुटन्नटाः ।

अमृता च वयःस्था च त्रिलिङ्गस्तु बिभीतकः ।

नाक्षस्तुषः कर्षफलो भूतावासः कलिद्रुमः ।

अभया त्वव्यथा पथ्या कायस्था पूतनामृता ।

करीतकी हैमवती चेतकी श्रेयसी शिवा ।

पीतद्रुः सरलः पूतिकाष्ठं चाथ द्रुमोत्पलः ।

कर्णिकारः परिव्याधो लकुचो लिकुचो डहुः ।

पनसः कण्टकिफलो निचुलो हिज्जलोऽम्बुजः ।

काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलयूर्जघनेफला ।

अरिष्टः सर्वतोभद्रहिङ्गुनिर्यासमालकाः ।

पिचुमन्दश्च निम्बेऽथ पिच्छिलागुरुशिंशपा ।

कपिला भस्मगर्भा सा शिरीषस्तु कपीतनः ।

भण्डिलोऽप्यथ चाम्पेयश्चम्पको हेमपुष्पकः ।

एतस्य कलिका गन्धफली स्यादथ केसरे ।

बकुलो वञ्जुलोऽशोके समौ करकदाडिमौ ।

चाम्पेयः केसरो नागकेसरः काञ्चनाह्वयः ।

जया जयन्ती तर्कारी नादेयी वैजयन्तिका ।

श्रीपर्णमग्निमन्थः स्यात्कणिका गणिकारिका ।

जयोऽथ कुटजः शक्रो वत्सको गिरिमल्लिका ।

एतस्यैव कलिङ्गेन्द्रयवभद्रयवं फले ।

कृष्णपाकफलाविघ्नसुषेणाः करमर्दके ।

कालस्कन्धस्तमालः स्यात्तापिच्छोऽप्यथ सिन्दुके।

सिन्दुवारेन्द्रसुरसौ निर्गुण्डीन्द्राणिकेत्यपि ।

वेणी गरा गरी देवताडो जीमूत इत्यपि ।

श्रीहस्तिनी तु भूरुण्डी तृणशून्यं तु मल्लिका ।

भूपदी शीतभीरुश्च सैवास्फोटा वनोद्भवा ।

शेफालिका तु सुवहा निर्गुण्डी नीलिका च सा ।

सितासौ श्वेतसुरसा भूतवेश्यथ मागधी ।

गणिका यूथिकाम्बष्ठा सा पीता हेमपुष्पिका ।

अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवी लता ।

सुमना मालती जातिः सप्तला नवमालिका ।

माध्यं कुन्दं रक्तकस्तु बन्धूको बन्धुजीवकः ।

सहा कुमारी तरणिरम्लानस्तु महासहा ।

तत्र शोणे कुरबकस्तत्र पीते कुरकण्टकः ।

नीली झिण्टी द्वयोर्बाणा दासी चार्तगलश्च सा ।

सैरेयकस्तु झिण्टी स्यात्तस्मिन्कुरबकोऽरुणे ।

पीता कुरण्टको झिण्टी तस्मिन्सहचरी द्वयोः ।

ओण्ड्रपुष्पं जपापुष्पं वज्रपुष्पं तिलस्य यत् ।

प्रतिहासशतप्रासचण्डातहयमारकाः ।

करवीरे करीरे तु ककरग्रन्थिलावुभौ ।

उन्मत्तः कितवो धूर्तो धत्तूरः कनकाह्वयः ।

मातुलो मदनश्चास्य फले मातुलपुत्रकः ।

फलपूरो बीजपूरो रुचको मातुलुङ्गके ।

इकाई 6 – वेद में उल्लिखित वनस्पतियों का परिचय

क्र.सं	वनौषधि	लौकिक नाम	उपयोगिता	वेद	Ref
1.	अक्ष	बहेडा	उदर शोधक, इसका चूर्ण खांसी, कफरोग, स्वरभेद और गलक्षय में प्रयोग (त्रिफला में प्रयोग)	ऋग्वेद अथर्ववेद	ऋ. ७.८६.६ अ. ७.५०.१
2.	अघद्विष्टा	दूर्वा	नासिका से रक्त आने पर रस का प्रयोग	अथर्ववेद	अ. २.७.१
3.	अजशृङ्गी	अराटकी	विभिन्न प्रकार के रोग कीटाणुओं को नष्ट करने में प्रयोग	अथर्ववेद	अ. ४.३७.६
4.	अतस/अतसी		मेधावृद्धि के लिए समिधा से होम	ऋग्वेद अथर्ववेद	ऋ. ४.४.४ अ. २०.५०.१
5.	अतिविद्ध भेषजी	पिप्पली	खांसी, श्वास, ज्वर, गुल्म, कफ इत्यादि अन्य बहुत सारी बीमारियों में प्रयोग (सितोपलादिचूर्ण में प्रयोग)	अथर्ववेद	अ. ६.१०९.१
6.	अदृष्टदहनी		व्रण, अस्थिजन्य विकार, बलवर्धक	अथर्ववेद पै	अ. ९.६.१
7.	अपराजिता		रक्षोघ्न	अथर्ववेद पै	अ. २०.२०.६
8.	अपस्कम्भ		सर्पविषघ्न	अथर्ववेद	अ. ४.६.४
9.	अपामार्ग	पुनर्नवा	शरीर के सभी रोगों को दूर करना, दुर्बलता नाशक इत्यादि	अथर्ववेद	अ. ४.१६
10.	अभिरोरुद		तेजोवर्धक	अथर्ववेद	अ. ७.३८.१
11.	अभ्रिखाता		विषनाशक	अथर्ववेद पै	अ. २.१.१
12.	अमूला	अमरबेल	बाण को विषाक्त करने हेतु	अथर्ववेद	अ. ५.३१.४

क्र.सं	वनौषधि	लौकिक नाम	उपयोगिता	वेद	Ref
13.	अरटु		रथ का अक्ष (धुरी) बनाने हेतु	ऋग्वेद अथर्ववेद	ऋ. ९.४६.२७ अ. २०.१३१.१५
14.	अरुन्धती		व्रण सही करने हेतु	अथर्ववेद	अ. ४.१२.१
15.	अरुस्राण	मूंज	रक्तस्राव, अतिसार, नाडीव्रण में उपयोगी	अथर्ववेद	अ. २.३.५
16.	अर्क	मदार	वात, खुजली, विष, व्रण, मलकृमि नाशक, दर्द सूजन में आराम	तैत्तिरीय	तै. ५.४.३३
17.	अर्जुन		हृदय रोग, पथरी में क्वाथ, अस्थिभंग रक्तस्राव में लेप	अथर्ववेद	अ. ४.३७.५
18.	अलसाला		आल रोग (गेहूँ का एक रोग)	अथर्ववेद	अ. ४.१६.४
19.	अलाबू	लौकी	सर्पविषघ्न, पित्त, कफनाशक	अथर्ववेद	अ. ८.१०.५
20.	अवक	शैवाल	पित्तज्वर नाशक	यजुर्वेद अथर्ववेद	य. १७.४ अ. ४.३७.८
21.	अवघ्नती		अपनी गन्ध से विषों को नष्ट करना, काटने वाले कीटों को मारना	ऋग्वेद	ऋ. १.१९१.२
22.	अश्वत्थ	पीपल	रूपशोधक, पित्त, कफ, रक्तविकार नाशक इत्यादि	यजुर्वेद	ऋ. १.१३५.८
23.	अश्वावती		शक्तिवर्धक	यजुर्वेद	य. १२.८१
24.	असिक्नी		श्वेतकुष्ठ, शरीर के धब्बों की औषधि	अथर्ववेद	अ. १.२३.३
25.	अस्तृत		शक्तिवृद्धि, बलवृद्धि	अथर्ववेद	अ. १९.४६.१

क्र.सं	वनौषधि	लौकिक नाम	उपयोगिता	वेद	Ref
26.	आञ्जन		पीलिया, ज्वर, कफ, हृदयरोग इत्यादि	ऋग्वेद	ऋ. १०.१४६.६
27.	आल		गोधूमव्याधि को दूर करता है	ऋग्वेद	ऋ. ६.७५.१५
28.	आवयु	सरसों	पत्तों का उपयोग चक्षुरोग में	अथर्ववेद	अ. ६.१६.१
29.	आसुरी	राई	श्वेतकुष्ठ, खाज -खुजली	अथर्ववेद	अ. १.२४.२
30.	आस्त्रावभेषज	कुशा	रक्तरोधक घाव में, शीतल, पथरी	अथर्ववेद	अ. ६.४४.२
31.	इक्षु		रक्तपित्त, क्षय नाशक, बलदायक इत्यादि	यजुर्वेद	य. २५.१
32.	इट		अस्थिभंग में क्वाथ से सिंकाई	अथर्ववेद	अ. ६.१४.३
33.	इन्द्राणी		विषघ्न	अथर्ववेद पै	अ. ९.१०.९
34.	उच्छुष्मा		बलदायक	अथर्ववेद पै	अ. ११.६.८
35.	उत्तानपर्णा		विषघ्न, मेधावर्धक, वात, कफ, ज्वर, शूल, वमन, कोढ, अतिसार, हृदयरोग, दाह, खुजली, श्वास, कृमि, गुल्म इत्यादि	ऋग्वेद	ऋ. १०.१४५.२
36.	उदुम्बर	गूलर	व्रणशोधक, पित्त, कफ और रक्तविकार शामक	तैत्तिरीय	तै. ४.१.१०.१
37.	उदोजस	अश्वावती	शक्तिवर्धक	ऋग्वेद	ऋ. १०.९७.७
38.	उपवाक	इन्द्र जौ/कुटज	ज्वर, अतिसार, वात, कफ इत्यादि	मैत्रायणी	मै. ३.११.२

क्र.सं	वनौषधि	लौकिक नाम	उपयोगिता	वेद	Ref
39.	उर्वारुक	ककडी/खरबूजा	शीतल, पित्तनाशक इत्यादि	यजुर्वेद	य. ३.६०
40.	ऋतजात	मधुला	विषनाशक	अथर्ववेद	अ. ५.१५.१
41.	औक्षगन्धि		कृमिनाशक	अथर्ववेद	अ. ४.३७.३
42.	कंकदन्ती	अतिबला	विषनाशक	अथर्ववेद पै	पै. ५.९.१
43.	कब्रू		कफरोग नाशक	अथर्ववेद पै	पै. २०.५६.९
44.	करीर		कृमिरोग, सूजन इत्यादि	तैत्तिरीय	तै. २.४.९.२
45.	कर्कन्धु	बेर	पित्त, दाह, रुधिरविकार, क्षय, तृषा इत्यादि	यजुर्वेद	य. १९.२३
46.	काकम्बीर		वायु प्रदूषण को नष्ट करना	ऋग्वेद	ऋ. ६.४८.१७
47.	कान्दाविष		विषचिकित्सा	अथर्ववेद	अ. १०.४.२२
48.	काष्मर्य		यज्ञों में दूषित तत्वों से सुरक्षा हेतु परिधि	मैत्रायणी	मै. ३.७.९
49.	किंशुक	पलाश	पेचिश, रक्तप्रदर	ऋग्वेद	ऋ. १०.८५.२०
50.	किलासभेषज		श्वेतकुष्ठनाशक	अथर्ववेद	अ. १.२४.२
51.	कुष्ठ	कूठ	ज्वरनाशक, कृमिनाशक, वातविकार, यक्ष्मा, नेत्ररोग, शिरोरोग, आंव इत्यादि	अथर्ववेद	अ. ५.४.१
52.	कृष्णल	गुंजा	आयु, तेजवृद्धि	मैत्रायणी	मै. २.२.२

क्र.सं	वनौषधि	लौकिक नाम	उपयोगिता	वेद	Ref
53.	केशवर्धनी		पलित केश, शीर्ष रोग, खालित्य(गंजापन) इत्यादि	अथर्ववेद	अ. ६.२१.३
54.	कियाम्बू		शीतलता के लिए	ऋग्वेद	ऋ. १०.१६.१३
55.	क्रमुक	तूतडी	सर्पविषनाशक (धनुष भी बनाते हैं)	मैत्रायणी	मै. ३.१.९
56.	क्षिप्तभेषजी	पीपर	उन्माद रोग, भूख बढाने, खांसी, प्रमेह, गठिया, प्लीहाशूल इत्यादि	अथर्ववेद	अ. ६.१०९.१
57.	क्षेत्रियनाशनी	लता	आनुवंशिक रोगों में	अथर्ववेद	अ. २.८.१
58.	खदिर	खैर	दांत, खुजली, सूजन इत्यादि	तैत्तिरीय	तै. ३.५.७.१
59.	खर्जूर		बलदायक, कफ, ज्वर, खांसी, दमा, मूर्छा इत्यादि	तैत्तिरीय	तै. २.४.९.२
60.	खल्व	चना	पित्तनाशक, कफनाशक	यजुर्वेद	य. १८.१२
61.	गर्मुत्	जंगली मूंग	कफ एवं पित्तनासक	तैत्तिरीय	तै. २.४.४.१
62.	गवीधुक	जंगली गेहूँ	बलवर्धक, पित्तनाशक	तैत्तिरीय	तै. १.८.७.१
63.	गुग्गुलु	गूगल	यक्ष्मा रोग(धूम से), कृमिनाशन, पथरी, भूख बढाने में पुराने घाव	तैत्तिरीय	तै. ६.२.८.६
64.	गोधूम	गेहूँ	वात,वित्तनाशक, बलवर्धक	यजुर्वेद	य. १८.१२
65.	घृताची		सर्पविषनाशक	ऋग्वेद	ऋ. १.१६७.३
66.	चीपुद्रु	चीड	विद्रधि, रक्तपित्त, हृयदरोग	अथर्ववेद	अ. ६.१२७.१

क्र.सं	वनौषधि	लौकिक नाम	उपयोगिता	वेद	Ref
67.	च्युकाकणी		विषघ्न, कृमिघ्न	अथर्ववेद पै	पै. ५.३.१
68.	जंगिड		विश्वभेषज, आशरीक, विशरीक, बलास, पृष्ठामय, सालभर रहने वाला ज्वर	अथर्ववेद	अ. २.४.१.६
69.	जम्बीर		कब्ज, खांसी, प्यास, हृयदपीडा	यजुर्वेद	य. २५.३
70.	जीवन्ती		केशवृद्धि	अथर्ववेद	अ. ८.२.६
71.	तलाशा		अरुचि, अग्निमान्द्य, क्षयरोग नाशक	अथर्ववेद	अ. ६.१५.३
72.	तिल		केशवृद्धिकरण, केशदृढीकरण, केशजनन	यजुर्वेद	य. १८.१२
73.	तिल्वक		कफ एवं पित्तनासक, प्रमेह, श्वेतकुष्ठ, पाण्डुरोग इत्यादि	मैत्रायणी	मै. ३.१.९
74.	देवमुनि		अपची, गण्डमाला	अथर्ववेद	अ. ७.७४.१
75.	नड		यक्ष्मनाशन	अथर्ववेद	अ. ८.१.३३
76.	न्यग्रोध	वट	दाह, व्रण, खूनी पेचिस, हाथ पैर फटने पर, दांतदर्द	मैत्रायणी	मै. ४.४.२
77.	पीतुदारु		गठिया, पुराने चर्म रोग इत्यादि	काठक	का. २५.६
78.	पुण्डरीक	श्वेतकमल	दाह, रुधिरविकार इत्यादि	अथर्ववेद	अ. ६.१०६.१
79.	पैद्व		विषघ्न	अथर्ववेद	अ. १०.४.१०
80.	प्रियंगु		टूटे अङ्गों को जोडना, कफनाशक	यजुर्वेद	य. १८.१२
81.	प्लक्ष	पाकर	व्रण, रक्तविकार, सूजन, रक्तपित्त नाशक	काठक	का. ४४.१
82.	बभ्रु	शंखपुष्पी	मेधावृद्धि के लिए, उन्माद, दुर्बलता एवं गण्डमाला में लाभ	अथर्ववेद	अ. ६.१३९.३

क्र.सं	वनौषधि	लौकिक नाम	उपयोगिता	वेद	Ref
83.	बलासनासनी		बलास(कफ), हड्डियों, हृदय के रोगों का नाश	अथर्ववेद	अ. ६.१४.१
84.	बिल्व	बेल	कब्ज, अतिसार, रक्तातिसार इत्यादि	मैत्रायणी	मै. ३.९.३
85.	भूर्ज		कर्णरोग, पित्त, रक्तविकार इत्यादि	मैत्रायणी	मै. १.१०.१२
86.	मण्डूकी		चर्मरोग खुजली आदि	अथर्ववेद	अ. १८.३.६०
87.	मदुघ		कफ, स्वरभेद, गला बैठना, जुकाम, खांसी	अथर्ववेद	अ. १.३४.४
88.	मुञ्ज	मूंज	दाह, तृषा, आंव, नेत्ररोग, आदि	ऋग्वेद	ऋ. १.१६१.८
89.	यव	जौ	शीतल, बुद्धि एवं अग्नि वर्धक, कण्ठरोग, त्वचारोग आदि	ऋग्वेद	ऋ. १.२३.१५
90.	रामा	भृङ्गराज	श्वेतकुष्ठ, पलित केश	अथर्ववेद	अ. १.२३.१
91.	वचा		कब्ज, शूल, कफ, ज्वर आदि	अथ. परि.	अ.प. १.४४.१०
92.	शाल्मलि	सेमल	पित्त, वात, रक्तपित्त नाशक	ऋग्वेद	ऋ. १०.८५.२०

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

द्वारा सञ्चालित एवं प्रस्तावित राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालय

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - ४५६००६ (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in